पंजाब-केशरी।

अर्थात्

महाराजा रणजीतसिंहका संक्षिप्त, सचित्र जीवन-चरित्र

लेखक

रामलाल वर्म्मा।

प्रकाशक

रामलाल वर्म्मा, प्रोप्राइटर—

"वर्म्मन प्रेस" और "आर० एल० वर्म्मन एण्ड को०,"

३७१, अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

मार्गशीर्ष, सं० १९७९ वि०

तृतीय संस्करण—२०

मूल्य आठ आना मात्र।

मुद्रक
रामलाल वर्म्मा
वर्म्मन प्रेस,
कलकत्ता

यह पुस्तक मैंने अपनी बाल्यावस्थामें लिखी थी और सन् १९०८ ई० में इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था, जो दो वर्षमें-ही बिक गया था। इसके बाद बहुत दिनोंतक इसकी माँगें आती रहीं और ग्राहकगण निराश होते रहे, पर कितनेही अनिवार्य कारणोंसे सन् १९१८ ई० तक इसका प्रकाशन न हो सका।

सन् १९१९ ई० में मैंने इसका द्वितीय संस्करण, प्रथम संस्करणकी त्रुटियोंको दूरकर और आवश्यकतानुसार संशोधित तथा परिवर्द्धितकर प्रकाशित किया। हर्षका विषय है, कि आज हिन्दी-भाषी सहृदय पाठकों-की कृपासे मुझे इस पुस्तकका तीसरा संस्करण भी लेकर उनके सम्मुख उपस्थित होनेका अवसर प्राप्त हुआ है।

इस संक्षिप्त जीवनीके लिखनेमें मुझे अँगरेजी, उर्दू तथा गुरुमुखी आदि भाषाओंकी कितनीही पुस्तकोंसे सहायता लेनी पड़ी है, अतः मैं उनके मूल लेखकोंका चिरकृतज्ञ हूँ।

कलकत्ता।
१८—११—१९२२

निवेदक—
रामलाल वर्मा,

विषय-सूची

पंजाब-केशरी महाराजा रणजीतसिंह की

संक्षिप्त जीवन चरित्र।

महाराजा बहादुरकी जीवनी, उनका विजित-साम्राज्य और राज-सभाके सदस्योंका वर्णन करनेके पूर्व, हम सिक्खोंके प्रारम्भिक वृत्तान्तका थोड़ासा वर्णन कर देना परमावश्यक समझते हैं ; कारण, कि इससे उनके चरित्रके समझनेमें पाठकोंको विशेष सुगमता प्राप्त हो सकती है।

सिक्ख-जातिकी उत्पत्ति।

सिक्ख-धर्म्मके नेता 'गुरु नानक साहब'ने सन् १४६९ ईस्वी (सम्राट् बाबरके राजत्वकाल) में, तिलौंडी-ग्राममें, जो रावी नदीके तटपर, लाहौरसे कुछ मील हटकर बसा है, जन्म-ग्रहण किया था। उनके पिता तिलौंडी-ग्रामके पटवारी थे * और

* अबके पटवारी यद्यपि माननीय हैं, तथापि उनका पद पैत्रिक न होनेके कारण वैसा प्रतिष्ठित नहीं है। गुरु नानकके पिता पुराने ढङ्गके पटवारी थे, जिनके हाथमें ज़मींदारोंकी चोटी भली प्रकार रहती थी। —लेखक।

उनके सहनिवासी जन, उनको प्रतिष्ठा तथा सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। यद्यपि गुरु नानकशाहको, बाल्यावस्थासे ही सांसारिक विषयोंमें अरुचि थी ; तथापि पिताके अनुरोधसे उन्होंने विवाह कर लिया था और सन्तान भी उत्पन्न हुई थी। किन्तु सांसारिक वैभवोंपर बाल्यावस्थासे ही विरक्ति होनेके कारण, शीघ्रही कुटुम्बकी मोह-ममताको तोड़, वे यात्राके लिये निकल पड़े। उनका मर्दाना नामक एक सेवक छायाकी भाँति सदा उनके साथ पर्यटन करता था। कहा जाता है, कि आप मुसलमानोंके प्रधान तीर्थस्थान 'मक्का शरीफ'में भी हो आये थे ; कारण, कि आपका विचार हिन्दू और मुसलमानोंको एक करनेका था। आपने वैराग्य-ग्रहण करनेके समयसे ही अपने पैत्रिक धर्म्मपर आक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया था। गुरु नानक साहब पक्के अद्वैतवादी('एको-ब्रह्म द्वितीयो नास्ति'के पक्षपाती) थे। सम्राट् बाबर आपकी वाणियोंको सुनकर बहुत प्रसन्न हुए थे और उनके प्रति सम्राट्की नाईंही बड़ी प्रतिष्ठासे व्यवहार करते थे।

गुरु नानक शाह सन् १५३८ ई० में, कुल ३६ वर्षकी अवस्थामें, कर्तारपुर ग्राममें, अपनी स्त्री और बच्चोंको छोड़कर कैवल्यको प्राप्त हुए। वे एक परमेश्वरको मानते थे और उसीके विषयमें उपदेश भी करते थे, किन्तु तीर्थ-यात्रा, रोजा-व्रत इत्यादि कठिन बन्धनोंके पूरे विरोधी थे। उनका उपदेश बड़ा प्रभाव-शाली और मर्मस्पर्शी होता था। उनकी मृत्युके उपरान्त

उनके चेलोंने उनकी वाणियोंका संग्रह करनेका बड़ा प्रयत्न किया और उनमेंसे जो कुछ मिलीं, उन्हें एकत्रित कर लिया।

गुरु नानक शाहने अपनी सन्तानोंमेंसे किसीको अपनी धार्म्मिक गद्दीका उत्तराधिकारी नहीं बनाया, वरन् अपने अङ्गद नामक एक प्रिय शिष्यको गद्दीपर बैठाया। उन्होंने अपने चेलोंको शिष्य, सिख वा सिक्खकी उपाधियोंसे विभूषित किया था; इसी कारण इनका सम्प्रदाय ही सिक्ख नामसे सम्बोधित होने लगा। पाँचवें गुरु 'अर्जुन'ने बाबा साहबके निर्मित महावाक्यों एवं अन्य गुरुओंकी "वाणियों"का संग्रह किया, जिसको सिक्खलोग "आदि ग्रन्थ" अर्थात् "प्राचीन पुस्तक" कहते हैं। इस ग्रन्थका सबसे उत्तम भाग "जपजी साहब" कहलाता है; जिसमें गुरु नानकने अपने धर्म्मका तत्व अत्यन्त सरलता पूर्वक वर्णन किया है। "कबीरदास" और "बाबा फरीद"के वचन भी गुरु नानकने अपने ग्रन्थ साहबमें सम्मिलित किये हैं। "गुरु-ग्रन्थ साहब"के भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न समयोंके विषयमें हैं। तथापि उसमें बहुतसे हिन्दीके शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। गुरु-ग्रन्थ साहबके महावाक्य इस समयकी प्रचलित पञ्जाबी (गुरुमुखी) भाषामें हैं, सुप्रसिद्ध गुरु "गोविन्दसिंह"ने "ग्रन्थ साहब" में अपनी ओरसे अनेक महावाक्य जोड़ दिये हैं, जो ठेठ हिन्दीके हैं।

गुरु नानकके उपरान्त उनकी गद्दीपर जितने गुरु बैठे, वे सब उनकेही मतकी पुष्टि करते गये। आश्चर्य्यकी बात है, कि—जो गुरु नानक धार्म्मिक विषयोंमें बन्धनोंके कट्टर विरोधी थे,

उन्हींके धर्म्ममें धीरे-धीरे अनेक बन्धनोंका समावेश होने लगा! सिक्ख-धर्म्म में दीक्षित होनेके कुछ नियम निश्चित हुए, जिनका अति संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

सिक्ख लोग शुद्ध जलमें मिश्री डालकर उसे तलवारसे घोलते थे और ऐसा करते समय ग्रन्थ साहबके कतिपय वचनोंको पढ़ते जाते थे। जो मनुष्य सिक्ख-धर्म्म स्वीकार करना चाहता था; उसको यह जल पिलाया जाता था और जो शेष रह जाता था, वह उसके सीस तथा अन्यान्य अङ्गोंपर छिड़क दिया जाता था। इस जल, अर्थात् शर्बतको सिक्ख लोग 'अमृत' के नामसे सम्बोधन करते थे और यह नियम पूरा हो जानेपर सब एकत्रित सिक्ख "श्रीवाह गुरूजीका खालसा" और "वाह गुरूजीकी फतह" इन वाक्योंका उच्चस्वरसे उच्चारण करते थे।

धीरे-धीरे यह धर्म्म "मालवा" और "माँझ"के जाट-ज़मींदारों तथा अन्यान्य छोटी-बड़ी जातियोंमें फैल गया। गुरु गोविन्दसिंहने इन धर्म्मावलम्बियोंको समयानुसार एक योद्धाओंका दल बना दिया। इसका मूल कारण मुग़ल-सम्राटोंका सिक्ख-गुरुओंपर अत्याचार करना हुआ। विशेष कर आलमगीर वा औरङ्गजेबने गुरु गोविन्दसिंहजीके पिताका सिर कटवा लिया था! उस समय गुरु गोविन्दसिंहकी अवस्था केवल पन्द्रह वर्षकी थी। पहले उन्होंने हिन्दी, फारसी, पुनः संस्कृतमें पूरा ज्ञान प्राप्त किया। जब वे तीस वर्षके हुए, तब मुसलमानोंसे लोहा लेनेके लिये अपने शिष्योंको वीर और लड़ाका बनानेमें

कटिबद्ध हुए। इस कार्य्यमें उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने अपने अनुचरोंके नाममें 'सिंह' अर्थात् 'केशरी'की उपाधि लगानी प्रारम्भ की। अन्तको गुरु गोविन्दसिंह मुग़ल-सम्राट् बहादुरशाहके साथ दक्षिणके युद्धमें गये और सन् १७०७ ई० में गोदावरी नदीके तटपर 'नादिरा' नामक स्थानमें एक अफ़ग़ान पठानके हाथसे मारे गये। गुरुजी निराकार ईश्वरके उपासक होनेपर भी दुर्गादेवीके सच्चे सेवक थे।

हम ऊपर कह चुके हैं, कि सिक्ख-धर्म्ममें विशेषकर 'जट्ट' वा 'जाट' लोग ही आये। जाटलोग अपने निवास-स्थानके कारण दो भागोंमें विभाजित हुए, जिनमेंसे एकको 'मालवा' और दूसरेको 'माँझ' कहते हैं। माँझ पञ्जाब देशके उस भागका नाम है, जो सतलज नदीके उत्तर वा यों कहिये, कि द्वाबःहारीके दक्षिणमें है। और मालवा उस भू-भागका नाम है, जो सतलजके दक्षिणकी ओर दिल्ली और बीकानेर तक चला गया है। मालवाके सिक्ख, फुलकिया-कुलको अपना सरदार और पूर्व-पुरुष मानते हैं और महाराज पटियाला, नाभा, जींद, बहादुर, मालूद, बादुरकान, जन्दा, दयालपुर, रामपुर, कोट, धवन इत्यादि इसी कुलसे उत्पन्न हैं। यह लोग मुख्यतः बादशाह दिल्लीकी प्रजा और करद राज्य कहलाते थे, किन्तु गुरु गोविन्दसिंह साहबके समयमें सिक्ख-धर्म्म में आकर मुल्क लेनेपर उतारू हुए और क्रमशः भिन्न-भिन्न स्थानोंपर अपनी जागीरें और रियासतें नियत करलीं; जिनमेंसे कतिपय अभीतक वर्त्तमान हैं। जैसे पटियाला, नाभा, फरीदकोट इत्यादि।

महाराजा रणजीतसिंहके समयसे पहले सिक्ख-सरदारोंके बारह कुल (मिसिलें) पञ्जाबके भिन्न-भिन्न भागोंपर अधिकारी हो गये थे और समयपर ७० हज़ार सवार युद्ध-क्षेत्रमें ला सकते थे। इनका वर्णन पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ नीचे दिया जाता हैः—

(१) 'भङ्गी मिसिल'—जिसके सञ्चालक हरीसिंह, झण्डी-सिंह और झण्डासिंह थे। ये जाट खेतिहर (किसान) थे। इस कुल वा मिसिलका यह नाम इस कारण प्रख्यात हुआ, कि इसके आदि पुरुष भङ्गका व्यवहार अधिकतर करते थे। इस मिसिलका राज्य रणजीतसिंहके राज्यमें मिल गया। इस जागीरसे लड़ाईके समय १० हज़ार सवार लड़ाईके मैदानमें आया करते थे।

(२) 'रामगढ़िया मिसिल'—इसका सरदार जस्सासिंह था। इसकी जागीर भी रणजीतसिंहके राज्यमें मिल गयी। इससे तीन सहस्र सवार रणभूमिमें आया करते थे।

(३) 'कन्हैया मिसिल'—यह जागीर लाहौरके पूर्व-ओर थी। इसका सरदार जस्सासिंह था। यह जागीर भी रणजीत-सिंहके राज्यमें मिलाली गयी थी। इससे ८ सहस्र सवार युद्ध-क्षेत्रमें उपस्थित होते थे।

(४) 'नकिया मिसिल'—इसका राज्य लाहौरके पश्चिम और मुल्तानके निकट था। यह राज्य भी लाहौरके राज्यमें मिल गया। इस राज्यसे २०,००० सवार लड़ाईके समय रण-भूमिमें उपस्थित होते थे।

(५) 'अहलूवालिया मिसिल'—इसका सरदार जस्सासिंह क़लाल था। इसका राज्य सतलजके आर-पार था। बादको यह राज्य भी महाराजा बहादुरके अधिकारमें हो गया था।

(६) 'दलील मिसिल'—इसका सरदार तारासिंह था। इसके इलाक़े लाहौरके पूर्वमें थे। इसके अनेक भाग लाहौर-राज्यमें सम्मिलित हो गये।

(७) 'निशानवालिया मिसिल'—जिसके प्रधान पुरुष सरदार सङ्गतसिंह और मेहरसिंह थे। इनके पास सिक्खोंका झण्डा (निशान अर्थात् विजय-सूचक पताका) रहता था। इनके राज्यसे लाहौर-राज्यको १२ सहस्र लड़ाके सवारोंकी सहायता मिला करती थी।

(८) 'फ़ैज़ुल्लाहपुरिया मिसिल'—जो सिंहापुरके नामसे प्रसिद्ध थी। इसके सरदार कपूरसिंह और खुशहालसिंह, अमृतसरके समीपवर्ती फ़ैज़ुल्लाहपुर नामक गाँवमें रहते थे। उन्होंने इस मौजेका नाम बदलकर सिंघापुर रख दिया। उनकी अमलदारी सतलजके पश्चिम और पूर्वमें थी। सवारोंकी संख्या २५०० सहस्र थी।

(९) 'करोड़सिंघिया मिसिल'—इसका सरदार करोड़ासिंह था, पीछे बघेलसिंह हुआ। इसका कुछ इलाका महाराजा साहबने अपने हस्तगत कर लिया था। इसके सवारोंकी संख्या १२००० सहस्र थी।

(१०) 'शहीदी मिसिल'—इसके सरदार कर्मसिंह और

गुरुबख़शसिंह थे। इस मिसिलके पूर्वपुरुष पटियालेके पश्चिम, दमदमा नामक स्थानमें मुसलमानोंके हाथसे मारे गये थे। इनका राज्य सतलजके पूर्वमें था और सवारोंकी संख्या २००० सहस्र थी।

(११) 'पुलकिया और भिखिया मिसिल'—जिसके सरदार राजा आलासिंह और अमरसिंह मालिक-पटियाला एकके उपरान्त दूसरे हुए। फूल एक प्रसिद्ध जाट था, जिसके वंशज, पटियाला, नाभा, जींद और कैथल इत्यादिके सरदार थे। इसके सवारोंकी संख्या ५००० सहस्र थी।

(१२) 'सुकर चकिया मिसिल'—इसके सरदार चरित्रसिंह महाराजा रणजीतसिंहके परदादा थे। इसके कुलके लोग सुकर चकियाके जाट थे। यह जागीर विशेष प्रशंसा करनेके योग्य है, क्योंकि अन्तको इसने यहाँतक अपना प्रभाव बढ़ाया, कि इसके सरदार महाँसिंह अन्यान्य मिसिलोंमें प्रधान माने गये और इनके पुत्र रणजीतसिंहने वह सम्मान प्राप्त किया, कि उन्हें 'शेर-पञ्जाब' अर्थात् 'पञ्जाब-केशरी' की अति प्रशंसास्पद उपाधि प्राप्त हुई।

पूर्ववर्णित सिक्ख-सरदारोंमें प्रायः छोटा-मोटा युद्ध हो जाया करता था और उन लोगोंके अधिकारकी सीमा बहुत शीघ्र परिवर्तित होती रहती थी। कभी-कभी विकट अवसरोंके आपड़नेपर सिक्ख-सरदार एकाकर मुसलमान आक्रमणकारियोंका सामना करते थे, परन्तु बहुधा प्रत्येक मिसिल जुदा-जुदाही काम

किया करती थी और एक साथ मिल कर काम करनेपर बाध्य न थी। अमृतसरमें दीवाली और बैसाखीके मेलोंके अवसरपर दो वार सिक्खोंकी एक बड़ी सभा (सङ्गत) बैठती थी। जब सिक्ख-सरदार लोग अमृतसरसे स्नान करके निकलते थे, तब उनकी एक और सभा 'गुरुमती'के नामसे बैठती थी। उसमें विशेष-विशेष लड़ाइयों या विशेष-विशेष पन्थ सम्बन्धी बातों-पर विचार होता था और उसी सभामें इन सब बातोंका निर्णय भी हो जाता था।

जब कई मिसिलोंके लोग एकत्र होकर देशसे कुछ रुपया युद्ध-करके स्वरूप जमा करते थे, तब ऐसी सेनाका नाम 'खाल-साजी' और रुपयेको 'रक्ख'का रुपया, अर्थात रक्षित-कोष कहते थे। जब ऐसी सेनाएँ किसी देशको जीत लेती थीं, तब उनका सरदार उन जीतनेवाले सिपाहियोंमें उस देशको बाँट देता था। ऐसे सिपाहियोंके छोटे-छोटे दलका मुखिया कभी-कभी अपने सिपाहियोंकी मज़दूरीके बदले अपने प्रधान सरदारसे रुपया भी लेता था; क्योंकि वे सिपाही मासिक वेतन नहीं पाते थे। जब लूटका माल वा कोई जीता हुआ राज्य बटता, तब पहले प्रधान सरदारका भाग निकाल कर अन्य सरदारोंको उनके सवारोंकी संख्याके हिसाबसे दिया जाता था। इन भागोंका नाम पतियाल था। प्रत्येक प्रधान सरदार अपने राज्यमें स्वतन्त्र था और जीते हुए राज्य भी इसी शर्त्तपर लिये जाते थे, कि उनकी स्वतन्त्रतामें कभी और किसी प्रकारका हस्तक्षेप न किया जायेगा।

उपर्युक्त बातोंसे अनुमान किया जाता है, कि सिक्खोंमें कोई व्यक्ति भी किसीके अधीन न था। प्रत्येक सिक्ख-सरदार अपने आपको स्वतन्त्र मानता था और किसीकी आज्ञाका पालन करनेको वाध्य न था ; क्योंकि मुसलमानोंकी तरह पहले सिक्खोंमें जाति-भेद नहीं माना जाता था और सब सिक्ख-आपसमें भाई-भाईकासा बर्ताव करते थे। धीरे-धीरे सिक्ख- धर्म्ममें भी अब जाति-भेद हो गये हैं।

राज्यके प्रारम्भमें सब सिक्ख-सरदार बराबरके हिस्सेदार थे। कोई किसीसे बड़ा या बलिष्ठ न था, कि वह दूसरेको अपने अधीन करनेका विचार करता—किन्तु कुछ दिनोंके बाद कोई-कोई सरदार अपनी बहादुरी तथा बुद्धिमानीके कारण अधिक प्रभावशाली होगये और उनसे छोटे तथा पड़ौसी जागीर-दारोंको अपने शत्रुओंसे बचनेके लिये उनकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

सिक्खोंकी मध्यवर्ती दशामें,जब कि वे बहुत बल प्राप्त कर चुके और बड़ी-बड़ी रियासतों और जागीरोंके स्वामी होगये। प्रत्येक सवारको, जो किसी सरदारके साथ लड़ाईमें जाता था, घोड़ा और तोड़ेदार बन्दूक आवश्यक होती थी। सरदारका यह धर्म्म था, कि वह अपने सवारोंकी सहायता करे और जब युद्धमें विजय प्राप्त हो,तब ईश्वर और गुरुके नामपर उन्हें लूटकी आज्ञा दे। मासिक वेतनका नियम एकदम नहीं था,सरदार और उसके सहगामी सवारोंका पालन-पोषण, शत्रुओंकी सामग्री

लूटनेसे होता था। वीरता प्रत्येक सरदारका आवश्यक गुण था। जो मनुष्य "अमरसिंह मजीठिया" की नाईं वृक्षमें तीर पार कर सकता था या जो मनुष्य "हरीसिंह नलुवा"की*नाईं तलवारके एकही वारसे सिंहका शिरःच्छेदन कर सकता था, वही मनुष्य सरदार माना जाता था और उसकी ख्याति सुन कर दूर-दूरके वीर उसके झण्डेके नीचे चले आरहे थे। धीरे-धीरे वीरता और बिरादरीके बड़प्पनके ध्यानसे सिक्खोंमें सरदारीका पद नियुक्त होने लगा और इसके उपरान्त राजा और सम्राट्का पद भी निश्चित हुआ।

सिक्खोंकी प्रसिद्धि, उनके बाहुबलकी पराकाष्ठासेही नियत हुई और सच तो यह है, कि संसारकी सभी बलवती जातियाँ इसी प्रकार गौरवको प्राप्त हुआ करती हैं। प्रत्येक सिक्ख-सरदारकी यह कामना रहती थी, कि वह अपने बल तथा बुद्धिसे अपने अनुचर एकत्र करे। सरदारोंको इस बातका तनिक भी ध्यान न था, कि जो लोग उनके झण्डेके नीचे आकर एकत्र होते हैं, वे किस समाज या जातिके हैं! हाँ, इतना अवश्य देख लिया जाता था, कि वे सवारका काम कर सकते और लड़ सकते हैं वा नहीं। इस महान् परिवर्त्तनके समयमें प्रत्येक सिक्ख पूरा सवार था और भली भाँति युद्ध कर सकता था। गाँव प्रायः ऊँचे स्थलोंपर बसते थे, जिसमें मैदानसे आनेवाले शत्रुओं-को भली भाँति देख सकें। उनकी गलियाँ ऐसी सङ्कीर्ण होती

* "हरीसिंह नलुवा"की जीवनी हमारे यहाँ ।) आनेमें मिलती है।

थीं, जिनमें कठिनतासे दो मनुष्य सटकर जासकते थे। उनमें जानेका केवल एकही द्वार रहता था। निदान, प्रत्येक ग्राम एक प्रकारका दुर्ग था। लोग अपने पड़ोसियोंको शत्रु समझते थे : किसान लोग खेत जोतते समय भी तलवार, बन्दूक अपने पास रखते थे। भूमि, घोड़ा और स्त्री उसी व्यक्तिका रक्षित रह सकता था, कि जिसके स्वामीमें उसके बचानेकी शक्ति हो। यवनों (मुसल्मानों) को लूटना और दिल्लीके यवन सम्राटोंकी रसद तथा अन्यान्य सामग्रीकी गाड़ियोंपर हाथ साफ करना प्रत्येक सिक्खका पहला काम था। सिक्ख लोग अन्य जातियोंकी अपेक्षा अधिकतर डाकू थे और अपनी जातिवालोंपर भी डाका डालनेमें सङ्कोच न करते थे, वरन् लूट-मारको वे लोग एक गौरवका काम समझते थे। परन्तु इतना अवश्य था, कि वे वीरोंकी नाईं छापा मारते थे, इतर डाकुओंको तरह चोरोंकी नाईं नहीं। स्त्रियोंका सतीत्व-नष्ट वा पुरुषोंपर व्यर्थ अत्याचार करना उनकी नीतिके विरुद्ध था। हाँ, इतना अवश्य था, कि जाट लोग लूट-मारके समय कम उम्रकी नवयौवना जाट-स्त्रियों-को भगा ले जाते थे। जाटनियाँ वीरताके कार्योंसे प्रायः प्रसन्न होती थीं और वीर जाटोंको प्रसन्नता पूर्वक अपना पति स्वीकार कर लेती थीं, चाहे वे किसी जातिके हों और चाहे उन्होंने उनके माता-पिता या अन्य सम्बन्धियोंको मारही क्यों न डाला हो!

सिक्खोंकी फौजमें प्रायः सवारही रहा करते थे, जो 'काठी-वराड' के नामसे प्रसिद्ध थे। पैदल फ़ौज भी सम्मानकी दृष्टिसे

देखी जाती थी। ये सिक्खोंमें पवित्र लड़नेवाली जातिके लोग माने जाते थे, जिस प्रकार, कि यवनोंमें 'गाजी' होते हैं। इनका वस्त्र नीले रङ्गका और सिरपर एक लोहेका चक्कर लगा रहता था, जिसे ये लोग सौन्दर्य्य तथा सिरकी रक्षाके लिये रखा करते थे। इनकी पगड़ीमें एक छुरी और गलेमें एक तलवार लटका करती थी और इनके हाथमें एक मोटा डण्डा भी रहा करता था। ये लोग भङ्ग पीकर जिस नगरको घेर लेते थे, उसपर बड़ी वीरतासे सबसे पूर्व आक्रमण करते थे। युद्धके समय तो इनसे बड़ी सहायता मिलती थी, पर शान्तिके समय इनकी लूट-मार असह्य होजाती थी। ये लोग परले सिरेके व्यभिचारी होते थे। सिक्खोंको प्रायः तलवारके युद्धका अभ्यास था। पैदल फ़ौज तीर-कमानका भी प्रयोग करती थी। कतिपय सेनानी तोड़ेदार बन्दूकें भी रखते थे। उन दिनों बारूद बहुत कम मिलती थी और सिक्खोंको स्वभावतः तोड़ेदार बन्दूकोंके प्रयोगमें अनिच्छा होती थी। इसी कारणसे इनके यहाँ तोपोंका एकदम अभाव था। रणजीतसिंहने इटली और फ्रान्सके अफसरोंकी सहायतासे तोपखाना तैयार किया था, पर उसमें अधिकतर मुसल्मानही भरती होते थे। सिक्खोंको इससे (तोपखानेसे) बड़ी घृणा थी। यदि कोई सिपाही युद्धमें घायल होता था, तो उसको पेन्शन मिलती थी। यदि कोई सिपाही युद्धमें मारा जाता था, तो उसका बेटा या अन्य कोई निकटवर्ती सम्बन्धी उसके स्थानपर नियुक्त किया जाता था। सिक्खों की एक और

वात भी कहने योग्य है, अर्थात् इनके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सरदारोंके नाममें कोई-न-कोई उपाधि अवश्य लगी रहती थी और हिन्दुओंसे विभिन्नता करनेके लिये वे अपने नाममें 'सिंह' शब्द आपसे आप जोड़ लेते थे। जैसे जस्सासिंह अहलूवालिया, अर्थात् जो 'अहलू' गाँवमें उत्पन्न हुआ था। गुणवाचक उपाधियोंकी भी सिक्खोंमें कमी नहीं थी। उदाहरणार्थ यहाँपर उनमेंसे कुछ लिखी जाती हैं :—

निधानसिंह 'वजहत्था' (फुर्तीला) लहनासिंह चमनी, मेहरसिंह लैंना, (ऊँचे कदका होनेसे) शेरसिंह कमला, (मूर्खताके कारण) कर्म्मसिंह निर्मला (शुद्ध रहनेसे)। इन गुणवाचक शब्दोंसे कोई नेकी, वदी, वा अन्य गुण प्रकट होते हैं। कतिपय कुलोंमें ये उपाधियाँ वरावर पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली जाती हैं, जो, कि उन कुलोंके गर्वका कारण होती हैं।

रणजीतसिंहका वंश-परिचय।

पाठकोंको यह न समझना चाहिये, कि संसारके अन्य सम्राटोंकी भाँति, रणजीतसिंह भी किसी प्राचीन राज-वंशके थे, वरन् जहाँतक इतिहासोंसे पता चल सकता है, वह केवल उनकी चार पीढ़ियों तकका है। उनके पूर्व-पुरुष कोई राजा या महाराजा न थे, केवल साधारण सिक्ख-सरदार थे, जिनकी एकमात्र जीविका लूट-मार थी ; किन्तु उन्होंने अपनी वीरतासे, अपनी जातिमें बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त करली थी। इस वंशकी जागीरका नाम 'सुकर चकिया' था और इनके कुलका सम्बन्ध 'सिन्धान वालिया' कुलसे बहुत अधिक था। ये दोनों कुल 'सांसी' कुलसे निकले थे। यद्यपि ये दोनों कुलवाले अपनेको राजपूत बतलाते हैं ; पर जहाँतक सुना जाता है, 'सांसी' लोग पश्चिमकी एक साधारण जातिसे उत्पन्न हैं। अमृतसरसे पाँच मीलके अन्तरपर एक गाँव—"राजा साँसी"के नामसे इसी कुलवालोंका अब तक बसा हुआ है।

पूर्वोक्त दोनों कुलोंका संस्थापक एक बुद्धसिंह' नामक डाकू था*। उसके पास अबलकी रङ्गकी 'देसी' नाम्नी एक घोड़ी

* पाठक ! मुझे रणजीतसिंहके पूर्व पुरुषोंकी निन्दा करनेका अपराधी ठहराते होंगे, किन्तु इच्छा न रहनेपर भी, इतिहास मुझे सत्य घटना लिखनेपर बाध्य करता है : इसलिये पाठक क्षमा करेंगे।

—लेखक।

थी। वह वीर पुरुष उसी घोड़ीपर सवार होकर देहातोंमें लूट-मार करता था। उस प्रान्तके लोग प्रायः उसकी लूट-मारसे दुःखित होगये थे। उसका नाम सुनकर लोग काँपते थे! उसके शरीरपर बन्दूक, बर्छी और तलवारके ४० चिह्न थे! अन्तको सन् १७१८ ई० में वह परलोकगामी हुआ और 'चन्दासिंह' तथा 'नवधसिंह' नामक दो लड़के छोड़ गया। वे दोनों भी अपने पिताकी भाँति वीर और साहसी थे। उन्होंने सन् १७३० ई०में "सुकर चकिया" गाँवको नये सिरेसे बसाया और बहुतसे वीरोंको एकत्र कर धीरे-धीरे आस-पासके अनेक गाँवोंपर अपना अधिकार कर लिया।

सिन्धान वालिया, सरदार चन्दासिंहके औरससे उत्पन्न थे और रणजीतसिंहके प्रपितामह 'नवधसिंह' थे, जो मजीठ नामक स्थानमें अफगानोंसे युद्ध करते समय मारे गये थे। उस समय उनके बड़े बेटे 'चरित्रसिंह' की अवस्था केवल पाँच वर्षकी थी। वे थोड़ेही समयमें एक बलवान् सरदार होगये थे। उन्होंने सरदार 'जस्सासिंह' और भङ्गी सरदारोंसे मेल-जोल बढ़ाकर बहुतसी फ़ौज एकत्र करली तथा लाहौरके 'गवर्नर' 'ईद खाँको उसके मुख्य स्थान गुजरानवालासे मारकर निकाल दिया और उसकी बहुतसी तोपें तथा अन्याय सामग्रियाँ छीन लीं।

इस समय 'जम्बू' का राजा 'रणजीतदेव' था, जो अपने बड़े बेटे 'बृजराज'से अप्रसन्न हो, उसको उत्तराधिकारत्वसे वञ्चित रखकर अपने छोटे बेटे दयालसिंहको गद्दी देना चाहता था।

वृजराजने विद्रोहका झण्डा खड़ा किया तथा चरित्रसिंहसे मदद माँगी और अपने बापको वञ्चित रखनेके बदले, बहुतसा रुपया कर-स्वरूप देना स्वीकार किया। चरित्रसिंहकी रण-जीतदेवसे शत्रुता थी। इस अवसरको अच्छा जानकर उन्होंने 'कन्हैया मिसिल'के सरदार जैसिंहको अपने साथ मिला लिया और जम्बूके राज्यमें 'वसन्तो' नदीके किनारे फ़ौज उतार दी। जम्बूके स्वामीको इसका समाचार मिल गया। उसने चाचा, नूरपुर, बुशायर और काँगड़ेके सरदारोंसे मदद मँगवायी और भङ्गी-सरदार झण्डासिंहको भी सहायताके लिये बुलवाया। पूर्वोक्त नदीके किनारे एक छोटासा युद्ध हुआ, जिसमें चरित्र-सिंह अपनी तोड़ेदार बन्दूक़के फटनेसे मर गये।

चरित्रसिंह ४५ वर्षकी अवस्थामें अपने महांसिंह' और 'सोहिजसिंह' नामक दो बेटों तथा राजकुँवर नाम्नी एक कन्या-को छोड़कर मरे थे। वे पहले एक साधारण डाकू थे; किन्तु तलवारके ज़ोरसे ऐसे बहुतसे इलाक़ोंके स्वामी हो गये, जिनकी वार्षिक आय, तीन लाख रुपयोंके लगभग थी। महांसिंहकी अवस्था इस समय 'लेपेलग्रिफेन'के कथनानुसार ११ वा १२ वर्ष और 'हेनरी टी० प्रिन्सेप'के कथनानुसार १० वर्षकी थी। उनकी माँ और सरदार जैसिंह कन्हैयाने एक मेहतरको घूस देकर, झण्डासिंहको मरवा डाला, जो अपने थोड़ेसे साथियोंके साथ घोड़ेपर सवार होकर कैम्पमें जारहा था। इस सरदारकी मृत्यु-से झगड़ा आप-से-आप मिट गया और प्रतिद्वन्दी सेनाएँ अपने-

अपने देशको चली गयीं। महाँसिंहने बृजराजदेवसे सन्धि करली।

चरित्रसिंहकी मृत्युके एक वर्ष बाद सन् १७७४ ई० में महाँसिंहने झींदके स्वामी राजा गजपतिसिंहकी भाग्यवती कन्या राजकुँवरसे व्याह किया। महाँसिंह बड़ी भारी बारात लेकर झींदमें गये और फुलकिया कुलके सरदार उनकी अगवानीको आये। विवाहके भोज और आनन्दादिके समय नाभा और झींदके बीच एक झगड़ा पैदा हो गया। कारण यह था, कि बारातियोंने चराईकी भूमिसे घास काट ली थी। नाभाके कार्य्यकर्त्ताओंने इनपर आक्रमण कर दिया। झींदके राजा गजपतिसिंह विवाहका अवसर होनेके कारण चुप रह गये। जब उन्हें अवकाश मिला, तब उन्होंने हमीरसिंह (नाभाके राजा) को पकड़कर उसके बहुतसे इलाक़ोंपर अधिकार जमा लिया। ६ वर्षके उपरान्त पूर्वोक्त रानी (राजकुँअर) के गर्भसे महाप्रतापी "रणजीत सिंहने" जन्म लिया।

रणजीत सिंहका जन्म ।

रणजीतसिंह सन् १७८० ई०में गुजरानवालामें उत्पन्न हुए थे । उस समय उनके पिताने धन और वैभवके लोभसे धोके-फरेबसे काम लेना प्रारम्भ किया था । वृजराजदेव अपने पिताके मरनेपर जम्बूका राजा माना गया; किन्तु वह व्यभिचारी था । भङ्गी-सरदारोंने उसके बहुतसे इलाके छीन लिये । महांसिंहकी मित्रतासे वृजराजको यह आशा हुई, कि अपने खोये हुए इलाके फिर प्राप्त हो जायेंगे । इस बीचमें कन्हैया और भङ्गी-सरदार राजासे शत्रुता करनेके लिये एकराय हो गये थे । वृजराजने महांसिंहसे सहायता मांगी । महासिंहने कन्हैया-सरदारपर आक्रमण किया; किन्तु मुँहकी खायी । जम्बूके राजाको कन्हैया-सरदार हकीकतसिंहको ५० हज़ार रुपया हानि वा करके स्वरूप देना पड़ा । जब वह रुपया न दे सका, तो हकीकतसिंहने महां-सिंहको उभारा, कि आओ हम तुम मिलकर जम्बूपर चढ़ाई करें और उसे आधा-आधा बांटलें ।"

महांसिंह बड़ी धूमधामसे बहुत सी फ़ौजके साथ गये और हकीकतसिंहसे पहलेही जम्बूपर एकाएक आक्रमण कर दिया । राजामें आक्रमण रोकनेकी शक्ति नहीं थी । वह पहाड़ोंकी तराईमें छिप गया । इतिहासोंमें इस बातके बहुतसे प्रमाण पाये जाते हैं, कि जेनरलों और राजाओंने सहस्रों बार अपने वचन भङ्ग कर दिये हैं । रणजीतसिंहके समयमें भी इसके उदाहरण

पाये जाते हैं। काबुलके वज़ीर फ़तहजङ्गने रणजीतसिंहसे छल करके काश्मीर जीत लिया था। महांसिंहने नगरको भली भाँति लूटा। महाराजके महलमें लूट मचा दी और बहुतसा लूटका माल लेकर अपने देशको चला आया। हकीकतसिंह बहुत छट-पटाया; पर कुछ कर न सका और इसी शोकमें थोड़े दिन बाद मर गया।

हकीकतसिंहका पुत्र जैसिंह इस कार्य्यवाहीसे बहुत असन्तुष्ट हुआ और प्रतिद्वन्दिताके लिये बड़े-बड़े प्रबन्ध करने लगा। उसने महांसिंहका बहुतसा इलाक़ा छीन लिया। वाध्य होकर उनको (महांसिंहको) क्षमा-प्रार्थी होना पड़ा। परन्तु जैसिंहने जम्बूकी लूटके मालमें बिना भाग लिये क्षमा करना स्वीकार न किया। महांसिंहको यह कब स्वीकार था, कि घर आया हुआ धन इस प्रकार दे दें। उन्होंने कन्हैया-सरदारको नीचा दिखानेकी इच्छासे सरदार 'जस्सासिंह' रामगढ़िया और 'राजा संसारसिंह' कांगड़ेवालेको गांठा और अन्य सरदार, जो जैसिंहसे अप्रसन्न थे, महांसिंहके झण्डेके नीचे आ गये। सबने मिल-मिलाकर जैसिंहके निवासस्थान 'बटाला' पर आक्रमण कर दिया। इस युद्धमें जैसिंहका पुत्र चन्दनगुरुबख़्शसिंह काम आया। पूर्वोक्त सरदारसे इस परामर्शपर सन्धि की गयी, कि वह कांगड़ेका दुर्ग संसारसिंहको लौटा दे और जस्सासिंह रामगढ़ियेका कुल इलाक़ा, जो उसने छीन लिया था, फेर दे। गुरुबख़्शसिंह (जो मारा गया था) की कन्या 'महताबकुंअर' हीहमारे चरित नायक रणजीतसिंहसे ब्याही गयी थी।

महांसिंह जीवन भर युद्धमें लगे रहे। यद्यपि सारे जीवनके उलट-फेरमें उनका इलाक़ा इतना बड़ा न हुआ, कि उनको राजाकी उपाधि दी जाती, पर तोभी समस्त पञ्जाबमें वे सबसे बड़े इलाक़ेदार हो गये और उस विद्रोहके समयमें भी पञ्जाबके लोग मालामाल हो गये, तथा चारों ओर शान्ति फैल गयी। अब हम उनके जीवनपर प्रकाश डालते हुए उनके होनहार, जगत्-प्रसिद्ध पुत्र 'रणजीतसिंह' का वृत्तान्त लिखना प्रारम्भ करते हैं।

सन् १७६० ई० में महांसिंहने कबीलाछटके बलवान् यवन-सरदार 'गुलाममुहम्मद'पर आक्रमण किया और उसके दुर्गपर अधिकार कर लिया। गुलाममुहम्मदके साथ उनकी पहले-सेही प्रायः छेड़-छाड़ रहा करती थी। उस सरदारके चाचा हश्मतखाँने उस हाथीपर चढ़कर, जिसपर रणजीतसिंह सवार थे, उन्हें मारना चाहा, कि साथही उनके एक नौकरने हश्मत-खाँका सिर काट लिया। यदि इस समय वीर रणजीतसिंह मारे जाते, तो पञ्जाब और भारतही नहीं, इङ्गलैण्डके इतिहासोंमें भी बहुतसे उलट-फेर होजाते।

सन् १७६१ ई० में गुजरातके स्वामी गूजरसिंहने स्वर्ग-वास किया, तो उसकी जगह उसका पुत्र साहबसिंह गद्दीपर बैठा। महांसिंहकी बहिन साहबसिंहसे व्याही गयी थी; किन्तु वह अपने सम्बन्धियोंसे अपने राजकीय प्रबन्धमें हस्तक्षेप न कराना चाहता था। यह अवसर गुजरातपर अधिकार करनेका अच्छा था। साहबसिंह सुकर चकिया-कुलकी प्रतिष्ठा न मानता था।

जब महांसिंहको इस बातके चिह्न देख पड़े, तो उन्होंने साहब-सिंहके दुर्ग 'सुधारन'को घेर लिया। साहबसिंहने इस विपत्तिमें भङ्गी-सरदारों और कर्मसिंह दोलू (जो चनीवटका भङ्गी-सरदार था) से सहायता माँगी। वे लोग बहुतसी फ़ौज लेकर आये और महांसिंहसे लड़नेकी शक्ति रखनेपर भी उनकी फ़ौजके इर्द-गिर्द घूमने और रसद इत्यादि लूटते रहे। महांसिंहने साहस करके भङ्गीसरदारोंका कैम्प लूट लिया और पुनः नियमानुसार दुर्गका घेरा प्रारम्भ किया, इसी समय वे (महाँसिंह) कठिन रोगसे ग्रस्त हुए और अपने मुख्य स्थान गुजरानवालामें आकर कुल २७ वर्षकी अवस्थामें मर गये!

रणजीतसिंहका बाल्य-चरित्र।

रणजीतसिंहकी सास सदाकुँअर, बड़ी चतुर, योग्य और राजनीतिक विषयोंमें बड़ा भाग लेनेवाली थी। पिताके मरनेपर रणजीतसिंहकी अवस्था कुल १२ वर्षकी थी। उनकी माँ उनकी संरक्षिका नियुक्त हुईं और महांसिंहका मन्त्री लखपतसिंह राज्यका प्रबन्धकर्त्ता नियत हुआ। सदाकुँअरके पति भी इसी बीचमें मर चुके थे। इस स्त्रीने सोचा, कि रणजीतसिंहकी फ़ौजसे इस प्रकार काम लेना चाहिये, कि मेरी और इनकी जागीरोंमें दूसरोंको हस्तक्षेप करनेका अवसर न मिले। उसने कन्हैया और सुकरचकिया इन दोनों मिसिलोंके सारे अधिकार अपने हाथमें रखे और सबसे पहले रामगढ़ियोंसे प्रबन्ध ठीक किया। सन् १७९६ ई० में अपनी और रणजीतसिंहकी फ़ौज लेकर उसने सरदार जस्सासिंह रामगढ़ियाके इलाक़ेपर (जो व्यासाके किनारे था) आक्रमण किया। किन्तु व्यासामें संयोगसे इतनी बाढ़ आयी, कि सदाकुँअरके अनेक सिपाही, घोड़े और ऊँट बह गये तथा रणजीतसिंह बड़ी कठिनतासे जान लेकर गुजरानवालाके दुर्गमें भाग आये।

रणजीतसिंहने बाल्यावस्थामें कुछ भी शिक्षा न पायी थी; क्योंकि सिक्खोंमें शिक्षा द्वितीयाका चन्द्र थी और किसीको पढ़ने-लिखनेका शौक़ न था। इसके विरुद्ध, जिसमें वे राज्य-कार्य्य-को न सम्हाल सकें, नौजवानीकी तरङ्गों और इच्छाओंको पूरा

करनेका पूरा-पूरा अवसर दिया जाता था। उनको किसी भाषाका लिखना-पढ़ना नहीं सिखाया गया था। अभी लखपतसिंह और रणजीतसिंहकी माताकी संरक्षताका समय नहीं बीता था, कि उनका दूसरा व्याह नकिया-सरदारकी कन्या राजकुँअरसे कर दिया गया।

माताका स्वर्गवास।

सत्रह वर्षकी अवस्थामें रणजीतसिंह अपनी जागीरका काम करने लगे और उन्होंने दीवान लखपतसिंहको पदच्युतकरदिया। फिर वे अपनी माता और सासकी संरक्षतासे भी अलग हुए और दिलसिंहकी सम्मतिसे लखपतसिंहको कैथलके भया-नक युद्धमें भेज दिया। वहांके कट्टर ज़मींदारोंने उसे मार डाला। पर जहाँतक जाना जा सका है, रणजीतसिंहके संकेत सेही उन्होंने ऐसा किया था। रणजीतसिंहकी माताके विषयमें भी लोगोंके विचार अच्छे न थे और दीवान लखपत-सिंहके अतिरिक्त और लोगोंसे भी उसका अनुचित सम्बन्ध बताया जाता था। जब रणजीतसिंहको यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने उसेभी मार डाला।

स्वातन्त्र्य-प्राप्तिका यत्न।

सदाकुँअर, इस नवयुवक सरदारके लिये एक काँटेकी नाईं थी और उसकी 'संरक्षता'से स्वतन्त्र होना कुछ काम रखता था। रणजीतसिंहमें इतनी शक्ति न थी, कि उसके दासत्वसे मुक्त होनेका यत्न करें। पहले वर्णन हो चुका है, कि सदाकुँअरने रणजीतसिंहको शिक्षासे वञ्चित रखा था और उनको दुर्व्यसनोंकी ओर झुकाती थी। उसका अभीष्ट यह था, कि रणजीतसिंह इन नीच कर्म्मोंमें डूब कर प्रधान सरदारीके पदके अयोग्य हो जायें। किन्तु रणजीतसिंहके विचार ऐसे भद्दे न थे, कि वे व्यसनके पञ्जेमें पड़कर जीवनके सत्कर्म्मोंसे वञ्चित हो जाते। साथही रणजीतसिंहका स्वास्थ्य भी इतना उत्तम था, कि अनेक युगोंतक इन कठिनाइयोंकी चोट सरलता पूर्वक सहता रहा। इसी बीचमें "शाहजमा" काबुलकी राजगद्दीपर आसीन हुआ और वह अपने पितामह अहमदशाहके विजय किये हुए पञ्जाब देशके प्रदेशोंको अपने राजमण्डलके अन्तर्गत लानेका विचार करने लगा।

सन् १७९५ से १७९७ ई०के बीचमें उसने पञ्जाब देशपर लगातार आक्रमण किये। सिक्खोंमें उसका सामना करनेकी सामर्थ्य न थी। पहले आक्रमणमें वह केवल झेलम तक पहुँचा और पुनः लौट गया; किन्तु दूसरे आक्रमणमें उसे अधिकतर सफलता प्राप्त हुई और फिर सन् १७९७ ई० में वह विना रोकटोकके

लाहौरका मालिक बन बैठा। किन्तु कुछ मास तक वहाँ निवास करनेपर उसे जान पड़ा, कि इस प्रदेशका कोई पक्का प्रबन्ध उससे नहीं हो सकता। आक्रमणके समय जिन सरदारोंके इलाक़े और जागीरें 'शाहज़मा' के रास्तेमें थीं, वहाँके सरदार उठ खड़े हुए। रणजीतसिंह भी सतलजके पार चले गये और वहाँके इलाक़ोंमें लूट-मार करने लगे। कतिपय सिक्ख-सरदारोंने अफगान-अधिपतिके साथ मैत्रीकी बातचीत की थी। रणजीतसिंहने भी मित्रता प्रकट करनेके लिये अपने एक विश्वास-पात्र सेवकको बादशाहकी सेवामें भेजा था। इसके उपरान्त 'शाहज़मा' अफगानिस्तानपर ईरानियोंके आक्रमणका समाचार सुन,अत्यन्त आतुरताके साथ काबुलकी ओर चल पड़ा। झेलम नदीमें उस समय बाढ़ आयी थी। उसको पार करते समय बादशाहकी १२ तोपें उसमें डूब गयीं। शाहज़माने रणजीतसिंहसे कहा, कि यदि तुम डूबी हुई तोपें निकलवा कर पेशावर भिजवा दोगे, तो तुम्हें लाहौरका नगर, उसके आसपासके इलाक़े और राजाकी उपाधि प्रदान की जायेगी। रणजीतसिंहने आठ तोपें निकलवाकर पेशावर भेजदीं। शाहज़माने अपना वचन पूरा किया और लाहौरके सूबेकी सनद भेजदी ; किन्तु यह केवल नियम-पालन था। वास्तवमें रणजीतसिंहको लाहौरपर अपनी वीरता और तलवारके बलसे अधिकार जमाना पड़ा।

रणजीतसिंहका लाहौरपर प्रभुत्व ।

लाहौर-नगर प्राचीन कालसे प्रसिद्ध तथा समृद्धिशाली है और सिक्ख-सरदारोंका इसपर बराबर दाँत रहता था। जब अहमदशाह अब्दाली लाहौरको अपने नायबके सुपुर्द करके चला गया, तब तीन सिक्ख-सरदारोंने उसपर अधिकार जमानेका निश्चय किया। सन् १७६४ ई० में एकदिन अत्यन्त अन्धेरी रातके समय दो भङ्गी-सरदार लहनासिंह और गूजरसिंह, एकाएक नगरमें घुस पड़े और लाहौरके गवर्नरको नाच देखते समय पकड़-कर लाहौरपर अधिकार जमा लिया। सरदार शोभासिंह कन्हैया बहुत देर बाद पहुँचा; किन्तु परामर्शानुसार उसको नगरका तीसरा भाग दिया गया। बस; इस समयसे नगरके तीन शासक बन गये, किन्तु उनकी सन्तानें मूर्ख निकलीं। जिस समय रणजीतसिंहको शाहजमासे लाहौरकी सूबेदारी मिली, उस समय लाहौरके शासक (हाकिम) चेतसिंह, मोहरसिंह और साहब सिंह थे। इनमेंसे साहबसिंह कुछ लायक था, पर शेष दोनों परले सिरेके विषयी और मद्यप होनेके कारण लगभग उन्मत्तसे थे। अवसर पाकर सदा कुँअरने भी रणजीतसिंहको सहायता दी। वे बहुतसे सिपाही लेकर लाहौरपर चढ़ गये। साहब-सिंह वहाँ मौजूद न था। नगरके फाटक, चेतसिंहके कारिन्दे मुहम्मदआशिक़ और मीरसादीने खोल दिये, जो पूर्वोक्त सरदा-रोंसे अप्रसन्न थे। मोहरसिंह और चेतसिंह भाग निकले।

प्रारम्भिक युद्ध ।

रणजीतसिंह जुलाई सन् १७९८ ई० में लाहौरके अधिकारी हुए। इस समय उनकी अवस्था केवल २०वर्षकी थी और उनको अफगान-बादशाहसे 'राजा' की उपाधि भी मिल चुकी थी। इससे उनकी धाक बँध गयी और सिक्ख-सरदारोंके कान खड़े हो गये। विशेषकर भङ्गी-सरदारोंने अपना राजसिंहासन छुड़ाने और रणजीतसिंहसे खेत लेनेकी ठहरायी और दूसरेही वर्षमें नवयुवक राजाका सामना करनेके लिये सिक्ख-सरदारों-का एक बलवान् दल बन गया। इनमें अधिकतर प्रसिद्ध सर-दार जस्सासिंह रामगढ़िया, साहबसिंह और गुलाबसिंह आदि भङ्गी-सरदार थे। इन लोगोंने सलाह की, कि रणजीतसिंहको 'भसइन' में भेंट करनेके बहानेसे बुलाकर मार डाला जाये। किन्तु वे बुद्धिमान और चतुर थे, इससे उनके षड्यन्त्रमें न फँसे। जब भेंट करने गये, तो अपने साथ इतने सिपाही ले गये, कि पूर्वोक्त सरदारोंको उनके मारनेका साहसही न हुआ। दो मासतक विवाद, भोज, मृगया (शिकार) तथा छोटी-छोटी लड़ाइयोंके उपरान्त उनकी सेना छिन्न-भिन्न होगयी और रण-जीतसिंह लाहौरमें लौट आये। मानो शत्रुओंने भी उनका लोहा मान लिया और वे बिना किसी भयके राज्य करने लगे।

इस समय पञ्जाबके भिन्न-भिन्न प्रान्तों और ज़िलोंपर मुस-ल्मान सरदार और नव्वाब अधिकारी थे। यद्यपि मुग़ल और

अफगान साम्राज्यका सूर्य्य मध्याह्नसे ढुलककर अस्त होनेके निकट था, तथापि उन लोगोंकी छायाके तले मुसलमानोंको बहुत कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त थी और सिक्ख-सरदारोंने मुसलमानोंकी नाकमें दम कर रक्खा था। इस समय 'कसूर' नगर प्रसिद्ध नव्वाब 'नजमुद्दीन' का मुख्य वास-स्थान था।

कसूरी मुसलमानोंने कई वार लाहौरतक सारा इलाका लूटा और नव्वाब स्वयम् रणजीतसिंहके विरुद्ध एका करनेका दोषी ठहरा! इस कारण रणजीतसिंह उसको शिक्षा देना उचित समझते थे। निदान उसपर चढ़ाई की गयी। नव्वाबको हार मानकर इस नवयुवक राजाकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी और यह बात निश्चय होगयी, कि कुतुबुद्दीन (नव्वाबका भाई) अवसर आनेपर रणजीतसिंहकी सहायता करनेके लिये जाया करे और उसकी रियासत रणजीतसिंहकी करद बनी रहे।

यह घटना सन् १८०१-२ ई० की है। इसी वर्ष महाराजा रणजीतसिंह, गुरु रामदासके तालाबमें स्नान करने गये और वहाँ सरदार फतहसिंह अहलूवालियासे भेंट होगयी। साथही दोनोंकी मैत्री हुई और दोनों धर्म्मके भाई बन गये, तथा नियमानुसार दोनोंने पगड़ियाँ अदल-बदल करलीं।

अभी भङ्गी-सरदारोंने अपनी कुटिलता त्यागी न थी, पर रणजीतसिंह भी अचेत न थे। उन्होंने अमृतसरमें, जो भङ्गियोंका मुख्य स्थान था, कहला भेजा, कि सन् १७६४ ई०में लाहौरपर अधिकार करनेके समय सिक्ख-सरदारोंने 'जमज़म' नामक तोप-

को मेरे पितामह 'चरित्रसिंहका' भाग निश्चित किया था, अतः उसपर मेरा स्वत्व है। आपलोगोंके लिये उत्तम होगा, कि उसे शीघ्र मेरे पास भेज दें; किन्तु भङ्गियोंने उनकी बात सुनी-अनसुनी करके टाल दी। यह देख, रणजीतसिंहने अमृतसरपर चढ़ाई करदी और भङ्गी-सरदारोंको पराजित करके, उन्हें रामगढ़िया सरदारोंके शरणागत होनेपर वाध्य किया। अमृतसर-पर भङ्गी और रामगढ़िया, दोनों सरदारोंका एक साथ अधिकार था। रणजीतसिंहने भङ्गी-सरदारोंके सब इलाक़ोंपर अधिकार कर लिया।

इस प्रभावशाली युद्धसे रणजीतसिंहका पञ्जाबकी आर्थिक तथा धार्म्मिक, दोनों राजधानियोंपर अधिकार होगया। अब उनको अपने शत्रुओंकी शत्रुताका वैसा डर न था, क्योंकि 'कन्हैया मिसिल' उनके हाथमें थी और रामगढ़िया सरदार जस्सासिंह बूढ़ा तथा निर्बल था। रणजीतसिंह जानते थे, कि थोड़ेही दिनोंमें इसकी रियासत भी मेरे अधिकारमें आजायेगी। जब पूर्वोक्त सरदार मरा, तो उसका पुत्र वा उत्तराधिकारी जोधासिंह हमारे चरितनायकका अनुचर बन गया। रणजीत-सिंह इस सरल-स्वभाव और वीर सरदारके इलाक़ोंसे, जो उनसे वैरभाव न रखता था, उद्दण्ड कार्य्य न करना चाहते थे। इस सरदारने रणजीतसिंहसे सर्व्वकालीन मैत्री रखनेका गङ्गाजल उठा लिया था और रणजीतसिंह इसकी सब प्रकारसे सहायता करते रहे। उन्होंने जोधासिंहके दुर्ग गोविन्दगढ़की, जो अमृत

सरमें था, नये सिरेसे मरम्मत करवा दी। यह सरदार रणजीतसिंहके साथ बहुतसी लड़ाइयोंमें गया था। जब जोधासिंह सन् १८१६ ई० में मर गया, तब उसके उत्तराधिकारियोंमें झगड़ा उत्पन्न हुआ। यह अवसर देख, रणजीतसिंहने गोविन्दगढ़के क़िलेपर अधिकार कर लिया, जिसके साथही रामगढ़ियोंके लग भग सौ छोटे-छोटे दुर्ग, जो अमृतसर, जालन्धर और गुरदासपुरमें थे, सब-के-सब रणजीतसिंहके राज्यमें मिल गये। इस कुलके सरदारोंको महाराजकी ओरसे बड़ी-बड़ी जागीरें और फ़ौजमें बड़े-बड़े पद मिले।

'नक्किया' सरदारोंकी जागीर सन् १८१० ई० में नाश हुई। पाठकोंको स्मरण होगा, कि रणजीतसिंहने इस कुलकी राजकुँअर नाम्नी एक कन्यासे विवाह किया था, जिससे उनका इकलौता पुत्र खड्गसिंह उत्पन्न हुआ था; किन्तु इस सम्बन्धसे रानी राजकुँअरको कुछ लाभ न हुआ। जब कान्हसिंह इस जागीरकी गद्दीपर था, रणजीतसिंहने उसको अपने दरबारमें बुलवा भेजा; किन्तु वह जानता था, कि यदि मैं लाहौरमें चला गया, तो वहाँसे फिरकर आना नसीब न होगा। इसलिये उसने कहला भेजा; कि महाराज बहादुर मुझे इस प्रतिष्ठासे क्षमा करें। राजा साहबने इस बातसे चिढ़कर उसकी जागरीके कुल इलाक़े, जो कसूर, चूनिया और 'गोगिरह' में थे, अपने राज्यमें मिला लिये।

कन्हैया-सरदारोंकी जागीर भी अन्तमें पञ्जाब-केशरीके अधिकारमें आगयी। इसका अधिकार, माई सदाकुँअरके हाथ-

में था। इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं, कि यह स्त्री चतुर और दृढ़प्रतिज्ञ थी, किन्तु महाराजा बहादुरके आगे इसकी भी न चली। सदाकुँअरने रणजीतसिंहके सामने शेरसिंहको उपस्थित करके कहा, कि यह 'महताबकुँअर' (उसकी बेटी, रणजीत-सिंहकी भार्या) के उदरसे उत्पन्न हुआ है। रणजीतसिंहने उस-को बुद्धिमत्ताके विचारसे अपना पुत्र मान लिया। सदाकुँअरने शेरसिं हको अपना पोष्य पुत्र बना लिया था और रणजीतसिंहने हज़ाराके मुहिमकी कमान देकर उसे रवाना किया था, जहाँपर उसने कुछ वीरताका भी परिचय दिया था।

जब वह अपने मुहिमसे लौटा, तब रणजीतसिंहने सदाकुँअर-को कहला भेजा, कि अब तुम सांसारिक मोह-ममता छोड़कर अपनी जागीर अपने दौहित्रको देदो। इस समय सदाकुँअर 'शाहदरा' की छावनीमें थी। उसने इस अवसरपर इस प्रस्ताव-को बिना कुछ कहे-सुने स्वीकार कर लिया, किन्तु फिर अपने मुख्य स्थान, बटालामें जाकर अङ्गरेज़ोंसे चिट्ठी-पत्री प्रारम्भ क और लिखा, कि—आपलोग मुझे अपनी शरणमें सतलज पार रहनेकी आज्ञा दें। महाराजा रणजीतसिंहने यह समाचार सुन, सदाकुँअरको अपने दर्बारमें बुलाकर धमकाया और कहा, कि—इसीमें तुम्हारी कुशल है, कि तुम अब संसारके वैभवको छोड़ दो। सदाकुँअर एक बन्द पालकीमें बैठकर भागी, पर महा-राजकी फ़ौजने उसे पकड़ लिया। अन्तमें महाराजने उसे एक क़िलेमे नज़रबन्द कर दिया और उसका देश अपने राज्यमें मिला

वीर-केशरी सरदार 'हरिसिंह नलवा' का युद्ध-कौशल।

लिया। 'अकालगढ़' और 'यशकरी' के किलोंके जीतनेमें बड़ी कठिनता पड़ी। वटाला शेरसिंहको जागीरकी भाँति दिया गया।

रणजीतसिंहका मुल्तान-विजय और उनके सेनापति हरिसिंहकी वीरता।

परम उद्यमी महाराजा रणजीतसिंहके हृदयमें अब बहुत दिनोंकी पुष्ट हुई मुलतान-विजयकी अकांक्षा अत्यन्त प्रबल हो उठी। इसीसे उन्होंने अपनी सेनासे विशेष-विशेष साहसी वीरोंको चुनकर मुल्तानको चारों ओरसे घेर लिया। यह देख, वहाँका सुलतान नव्वाब मुजफ्फरखाँ बहुत घबराया और उसने इस सहसा आपड़नेवाली विपत्तिको बीचमेंही रोकनेके लिये अपनी असीम सेनाको मुकाविलेके लिये भेज दिया। नव्वावी सेना-को, अपनी गतिमें वाधा डालनेके लिये आते देखकर महाराजा वहादुरकी सेना एकदम आगबबूला होगयी और दोनों ओरसे घमासान युद्ध होने लगा। दोनों ओरके वीरोंनेही अपने-अपने प्राणोंकी ममताको छोड़ दिया। अपरिमित बलशाली और रणविजयी रणजीतसिंहकी सेनाके आगे मुजफ्फरखाँकी सेना कबतक टिक सकती थी? मुजफ्फरखाँके बारम्बार उत्साह दिलानेपर भी नव्वाबी सेनाके पाँव उखड़ गये और वह अस्त्र-

शस्त्रोंको फेंक, बिना लगामके घोड़ेकी भाँति अधाधुन्ध भाग चली। यह देख, मुजफ्फरखाँके भी होश उड़ गये और वह प्राण-भयसे भीत होकर फ़ौजके पीछे-पीछे भाग निकला। रणजीतसिंहने उसे पकड़नेके लिये धावा किया। अपने पीछे महाराजाको आते देख और बचनेके समस्त मार्गोंको अवरुद्ध पा, हारकर नव्वाव मुजफ्फरखाँने महाराजकी शरण लेली। साथही बहुतसी अमूल्य भेंट भी मँगवाकर नज़र कीं। नव्वावकी इस प्राण-भिक्षा और नम्रतासे महाराजा बहादुरका हृदय दयासे भर गया; अतएव वे अपनी फ़ौजके साथ लाहौर लौट आये।

कुछ दिन चुप रहनेके बाद युद्ध-व्यवसायी महाराजा रण-जीतसिंहने मुल्तान-शहरपर अधिकार कर लेना अपना एक मुख्य ध्येय समझा, इसीसे एक बार नव्वावको क्षमाकर देनेपर भी वे स्थिर होकर न बैठ सके और फिर सन् १८१० ई० में अपने वीर सिपाहियोंके साथ मुल्तानपर चढ़ाई कर दी। पर इस बार नव्वाव नहीं लड़ा, वरन् एक लाख अस्सी हज़ार रुपया भेंट देकर उसने महाराजको सन्तुष्ट कर दिया।

इसी बीचमें झंगके सुल्तान अहमदखाँ और महाराजामें अनबन हो गयी, अहमदखाँ एक असम साहसी वीर था। उसकी नस-नसमें मुसल्मानी खून भरा हुआ था। इसीसे उसने महा-राजा बहादुरकी असीम शक्तिकी कुछ भी परवाह न कर उनसे युद्ध ठान दिया। युद्ध तो ठान दिया और अपने वीरत्वका परिचय भी भली भाँति दिया, पर महाराजाकी विजयिनी,

रणबाँकुरी सेनासे लोहा लेना कोई आसान काम नहीं था, इसीसे बात-की-बातमें उसके अनेकों सिपाही समरशायी होगये। यह देख वह रणभूमिसे भागकर मुलतान पहुँचा और मुजफ्फर-खाँकी शरण ली। मुजफ्फरने शरणागत बन्धुकी रक्षा की। इससे रणजीतसिंह मुजफ्फरसे फिर रुष्ट होगये और उन्होंने खूब धूमधामके साथ फिर मुलतानपर धावा बोल दिया। इतिहासमें यह लड़ाई ४ थे युद्धके नामसे उल्लिखित है। इस चढ़ाईका प्रधान सेनापति "हरिसिंह नलुवा"* था और महाराजा बहादुरके प्रधान-प्रधान अमात्यगणभी हरिसिंहके साथ थे। सेनापतिने

---

* पाठकोंने इस पुस्तकमें सरदार चढ़तसिंह और सरदार महासिंहका नाम कई स्थानोंपर पढ़ा होगा, सेनापति हरिसिंहके पिता सरदार गुरुदयाल-सिंह इन्हींके पास रहा करते थे; वे जातिके खत्री थे। गुरुदयालसिंहने अनेकों बार बड़ी-बड़ी लड़ाइयोंमें विजय प्राप्त कर अपने मालिकोंका यश बढ़ाया था। सन् १७९१ ई०में हरिसिंहका जन्म हुआ। कहते हैं, हरिसिंह-की ६ वर्षकी अवस्थामेंही उनके पिताका परलोक-वास हो गया था। उस समय महाराजा रणजीतसिंह गुजरानवालाका प्रबन्ध करते थे। महाराजा बहादुर इस होनहार बालकको देखकर भली-भाँति समझ गये, कि—यह बालक एक दिन बड़े-बड़े वीरोंके दाँत खट्टे करेगा। अतएव तभीसे वे उसे अपने पास रखने लगे थे। हरिसिंहने वीरोचित शिक्षा प्राप्तकर सबसे प्रथम १८०७में 'कसूर' नामक नगर फतह किया,—इससे रणजीतसिंह बड़े प्रसन्न हुए और तभीसे इन्होंने हरिसिंहको अपना सेनापति बना लिया।

—लेखक।

मुल्तान जाते हुए रास्तेमें अनेक उमरावों और ज़मींदारोंसे तरह-तरहकी भेंटें प्राप्त कीं, अनन्तर वे सीधे मुल्तान जा पहुँचे। इस बार मुजफ्फरखाँ समस्त समाचार सुनकर किसी प्रकारकी खुशामद-बरामद न कर, निःसंकोच भावसे युद्धके लिये प्रस्तुत होगया। खूब युद्ध हुआ। दोनों ओरकी सेनाओंने जी खोलकर युद्ध किया; एक बार तो ऐसा हो गया, कि नव्वाबकी सेनासे पार पाना रणजीतसिंहकी सेनाके लिये बड़ा कठिन होगया। इससे सेनापति हरिसिंह मनमें अति क्रुद्ध हुए और असीम उत्साहके साथ अपनी सुदक्ष सेनाकी परिचालना करने लगे। इससे समस्त सेनामें एक अभूतपूर्व बल आगया और बात-की--बातमें नव्वाबी सेनाके पैर उखाड़ दिये गये। शत्रु-सेना भाग चली। हरिसिंह 'वाह गुरुकी फतह' का धार्मिक शब्द उच्चारण करते हुए मुल्तानके क़िलेमें घुस गये। नगर अधिकारमें आ गया। हरिसिंहने अपनी फ़ौजको नगर लूटनेकी भी आज्ञा दे दी। नगरमें बहुत देरतक लूट-मार होती रही, सिपाही मालामाल हो गये।

महाराजा रणजीतसिंहकी विजय हुई। अब केवल शाही महल अधिकारमें आना बाक़ी रह गया था।

उसी समय एक अघटन घटनाका सूत्रपात हुआ। अर्थात् महाराजा बहादुरके प्रधान दीवान भवानीदासको लोभके भूतने आ दबाया एवं मुल्तान हाथमें आकर फिर निकल गया! यह घटना इस प्रकार है, कि जिस समय नव्वाब मुजफ्फरखाँने देखा,

कि "क़िला तो हाथसे गया, अब सम्भवतः प्राणोंपर भी शीघ्रही संकट आवेगा, क्या करूँ?" उस समय उसे सहसा एक उपाय सूझ पड़ा, कि दीवान भवानीदासको लोभका शिकार बनाना चाहिये। उपाय सफल हुआ। दीवान साहब नव्वाबकी इस चिट्ठीको पाकर,—"दीवान बहादुर! मैं महाराजा बहादुरका पूरे तौरसे हुक्मबरदार हूँ, तो भी न मालूम क्यों महाराजा सहाब मेरे प्राण और धनके पीछे हाथ धोकर पड़े हुए हैं, अब मैंने आपकी शरण ली है, यदि आपकी कृपासे मुझे प्राण-भिक्षा मिल जाये एवं महाराजा बहादुरकी सेना क़िला छोड़कर लाहौर लौट जाये, तो मैं जीवन भर आपका उपकृत रहूँगा। इसके सिवा दस हज़ार रुपया भेंट स्वरूप आपकी सेवामें भेजता हूँ। यदि आप मेरी इस प्रार्थनाको स्वीकार कर लेंगे, तो आपको लाभके सिवा हानि तनिक भी न होगी क्योंकि एक तो मैं आपका मरण पर्यन्त उपकृत रहूँगा, दूसरे घरमें धन आता है। यदि आप मेरे इस प्रस्तावमें सहमत हो गये, तो आपको पीछेसे भी सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा की जायेगी"—पाप पङ्कमें फँस गये एवं सेनापति हरिसिंहको क़िलेपरसे सेना हटानेका हुक्म दे दिया।

महाराजा रणजीतसिंहके 'मर्जीदान' दीवान भवानीदासकी इस अद्भुत आज्ञाको सुनकर हरिसिंह एकदम आश्चर्यमें आगये; पर करतेही क्या? दीवानकी आज्ञा थी!—युद्ध स्थगित कर दिया गया। सेना और सेनापति युद्धभूमि छोड़, लाहौरकी ओर लौट पड़े।

जिस समय सरदार हरिसिंह सेना सहित लाहौरकी सीमा-में पदार्पण करनेवाले थे, उसी समय महाराजा बहादुरका भेजा मुल्तानकी छावनीके पतेका, उन्हें एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था, कि,—'मुल्तानका क़िला ले लेनेके लिये बधाई, अब नगर भी शीघ्र अधिकार कर लो।'

यह कैसा इन्द्रजाल ! एकदम दो आज्ञाएँ कैसी ? सेना और सेनापति दोनोंही अचम्भित हो गये, तथापि इस आश्चर्य्य-पूर्ण ; दुर्भेद्य पहेलीको समझनेके लिये पीछे न लौट, सबके सब लाहौर चले गये एवं महाराजाके सामने जाकर समस्त वृत्तान्त कह सुनाया।

दीवान भवानीदासकी इस नमकहरामी और विश्वासघा-तकतापर महाराजा बहादुर अत्यन्त क्रोधित हुए, यहाँ तक कि अपना प्रेम-पात्र होनेपर भी कर्त्तव्यानुरोधवश उसे जीवन भरके लिये क़ैद कर दिया एवं राजकुमार खड्गसिंह, सेनापति हरिसिंह तथा अनेक शूर सामन्तोंके साथ अपनी अतुल सेनाको पुनः मुल्तान जीतनेके लिये भेज दिया।

इस बार सिक्ख-सेनाके समस्त वीर नव्वाब मुजफ्फरखाँ-पर अतिशय क्रुद्ध थे। अतः जातेही क़िलेपर धावा कर दिया। उधर मरणकाल उपस्थित देख, नव्वाबने भी प्राणके मोहको त्याग घोर युद्ध किया। इतिहासमें उन्नीसवीं शताब्दिके इस युद्धका खूब ज़ोरदार वर्णन है। सारांश यह, कि—मुल्तानकी नव्वाबी सेनाके जीवन-भय त्याग कर लड़नेपर भी शूर-श्रेष्ठ सिक्ख

वीरोंने बात-की-बातमें उन्हें धराशायी कर दिया, तथापि क़िलेके भीतरके मुसलमान सैनिक मोर्चोंपर डटे रहे। इसी समय सहसा अकाली साधूसिंह नामका सामन्त 'वाह गुरुकी फतह'-का धार्म्मिक शब्द उच्चारण करता हुआ क़िलेकी दीवारपर चढ़ गया और कूदकर क़िलेका दर्वाज़ा भीतरसे खोल दिया! हरिसिंह सेना सहित गढ़में घुस गये और वहाँके सैनिकोंको मारकर क़िलेपर पञ्जाब-केशरीका झण्डा गाड़ दिया।

महाराजा बहादुरकी विजय हुई। सेनाने मनमाने ढङ्गसे पुनः शहर लूटा। नगरपर अपना अधिकार जमा एवं मुजफ्फरखाँको पकड़कर हरिसिंह लाहौर लौट आये। महाराजा बहादुरने सरदार हरिसिंह और अकाली साधूसिंहको अनेक प्रकारके पुरष्कार देकर यथेष्टरूपसे सम्मानित किया।

काश्मीर-विजय ।

मुलतान-विजय हुए अभी सालभर भी न बीता था, कि महाराजा रणजीतसिंहकी सदृश भारतके भू-स्वर्ग काश्मीर-राज्यपर पड़ी । काश्मीरको जीत लेनेकी लालसा भी यद्यपि महाराजाके हृदयमें नूतन नहीं पुरातन थी, पर उस ओर उनका विशेष ध्यान न था । आजकल उन्हें निश्चिन्तता थी । निश्चिन्ततामें नवीन भावनाओंका उद्भव हुआही करता है। तदनुसार महाराजके हृदयमें उपर्युक्त भावनाने ज़ोर दिया और काश्मीरपर चढ़ाई करनेकी तैयारी होने लगी । ६ फरवरी १८१६ का दिन था, सहसा काश्मीरके नव्वावका वीरवर नामक प्रधान अमात्य उसके अत्याचारोंसे पीड़ित होकर लाहौर आया और महाराजाकी शूर-सामन्तोंसे भरी सभामें जाकर उसने दुहाई दी, कि धर्म्मावतार महाराजा रणजीतसिंह ! मेरी रक्षा करें।

महाराजा बहादुरने उसे अभय देते हुए समस्त वृत्तान्त पूछा । पूछनेपर मालूम हुआ, कि—वहाँका नव्वाब जब्बारखाँ प्रजाको मनमाने और व्यर्थ कष्ट देता है ; यहाँतक, कि काश्मीरकी समस्त प्रजा उसके व्यवहारोंसे तङ्ग आगयी है और चाहती है, कि—ऐसे अत्याचारी सुल्तानका शीघ्र पतन हो । नव्वाब जब्बारखाँके कुछ ऐसे मुँह चढ़े लोग हैं, जिनकी बातोंमें आकर वह काश्मीरके प्रतिष्ठित जागीरदारों और रईसोंकी इज़्ज़त बात-की-बातमें मिट्टीमें मिला देता है। वीरवर भी उन्हीं लोगों

द्वारा की हुई शिकायतसे बेइज़्ज़त किया गया ; यहाँ तक, कि—जब्बारने उसे देश-निकालेकी आज्ञा दे दी है।

महाराजा बहादुरने अपनी मनोगत आकांक्षाको पूर्ण करनेके लिये यही समय उपयुक्त समझा और इस न्यायसे, कि—ईश्वर-की रची सृष्टिको किसी अन्यायीके अन्यायसे बचाना प्रत्येक सामर्थ्यवान् और शक्तिशाली पुरुषका कर्त्तव्य है, उन्होंने ६ फरवरी १८१६ ई० को अपनी शत्रु-विजयिनी सेना काश्मीर-विजयके लिये भेज दी ! इस सेनाके प्रधान सेनापति राजकुमार खड्गसिंह और सरदार हरिसिंह थे। इसके अलावा कुछ सेना मिश्र दीवानचन्द्के अधिकारमें देकर उन्हें भी सम्भरके मार्गसे काश्मीर भेज दिया। इन सबमें प्रधान सेना-नायक राजकुमार खड्गसिंहही थे।

इस प्रकार महाराजा बहादुरका यह बाहुबल वर्षा-ऋतुके घनघोर मेघोंकी भाँति कुछही दिनों बाद काश्मीर-प्रदेशमें जा पहुँचा।

उधर काश्मीरके नव्वाब जब्बारखाँको महाराजा रणजीत सिंहकी इस चढ़ाईका समाचार पहलेही मिल चुका था। अत-एव वह भी इस युद्धके सरोसामानसे शीघ्रही लैस होगया।

रणजीतसिंहकी सेनाके,काश्मीरकी सीमामें पहुँचनेके पहले-ही, नव्वाबकी सेनाने उसे बीचमेंही रोकना चाहा। अतः दोनों ओरसे युद्ध छिड़ गया। सवेरेसे साँझतक खूब मार-काट होती रही, पठान-सेनाने जी-तोड़कर सिक्ख सेनाका सामना किया ;

किन्तु सायङ्कालके ७ बजे रणजीतसिंहकी सिक्ख-सेना न मालूम किस नवीन बलसे बलीयान् होकर पठान-सेनापर यमदूतोंकी भाँति टूट पड़ी ! बात-की-बातमें मुसलमानी सेनाके पाँव उखड़ गये और वह खेत छोड़कर भाग खड़ी हुई। यह देख, सिक्ख-सेनाका उत्साह और भी बढ़ गया एवं उसने पठान-सेनाका समस्त सरोसामान लूट लिया।

इस प्रकार सिक्ख-सेना अपने कण्टकाकीर्ण पथको साफ-कर आगे बढ़ी। काश्मीर-प्रदेश पर्व्वतमय है। उसे शीघ्रही उत्तीर्णकर नव्वाबी सल्तनत काश्मीरमें पहुँचना बड़ी टेढ़ी खीर था। अतएव रणजीतसिंहकी सेना बीच-बीचमें पड़ाव डालती हुई १६ जून १८१६ ई० को पर्व्वतोंसे उतरकर सब्ज मैदानमें पहुँची, तो उसे वहाँपर कुछ पठान सैनिक देख पड़े।

उपर्युक्त पठान-सैनिक काश्मोरकी सीमाके युद्धमें हारकर भागे हुए थे। यहाँपर आकर उन लोगोंने पुनः सेनाका संगठन करना आरम्भ कर दिया था। उद्देश्य, वही शत्रु-सेनाकी गति-में बाधा डालना था। अतएव सिक्ख-सेनाको देखतेही पठान-सेनाने एकदम उसपर धावा कर दिया। सिक्खोंने पठानोंकी सेनाको युद्धके लिये उपस्थित देख, शीघ्रही हथियार बाँधकर युद्धका डङ्का बजा दिया। मारू बाजोंके बजतेही सिक्ख-सेनाके वीरोंकी भुजाएँ युद्धके लिये फड़क उठीं।

उधर पठान-सेनाके दो भाग किये गये थे, एक भागको शत्रु-सेनासे मुकाबिला करनेका भार दिया गया था और दूसरेको

उसकी मददके लिये हर वक्त तैय्यार रहनेको आज्ञा मिली थी। अब पठान और सिक्ख-सेनाएँ दोनों आपसमें भिड़ गयीं। दोनों ओरसे मार-काट शुरू हो गयी। इस बार पठान-सेना खूब दिल खोलकर लड़ी। कहते हैं, कि इस युद्धमें सिक्ख-सेनाके बहुतसे वीर पठानोंके हाथसे मारे गये। यह देख, खड्गसिंहको बड़ा क्रोध आया और वे वीर हरिसिंहको ललकारकर बोले,—"आज यह कैसी अद्भुत बात है,जो मुट्ठीभर पठान असीम सिक्ख-सेनापर आरम्भसेही विजय पाते जारहे हैं, क्या यहाँपर सिक्ख जातिके मस्तकपर कलङ्कका टीका लगेगा?" राजकुमारकी इस श्लेषपूर्ण उक्तिको सुन, हरिसिंहने अपने सैनिकोंको खूब बढ़-बढ़कर उत्साह दिलाया; इससे सिक्ख-सेनामें नवीन बलका सञ्चार हुआ और उसने जोशमें आकर बात-की-बातमें पठान सैनिकोंको अपनी बन्दूकोंकी मारसे ज़मीनपर बिछा दिया।

यह देख, पठान सेनाका दूसरा भाग भी अपने साथियोंकी सहायता करनेके लिये सिक्ख-सेनापर टूट पड़ा। फिर घमासान युद्ध होने लगा, रक्तकी नदियाँ बह निकलीं। पर सिक्ख वीरोंसे मोर्चा लेना, एक अनहोनी सी बात थी, इससे अवशिष्ट पठान सैनिक भी बात-की-बातमें ज़मीनपर पड़े दिखाई दिये।

महाराजा बहादुरकी जीत हुई। उनकी सेना पठान-सैनिकों-को पुनः परास्तकर काश्मीरकी ओर चल पड़ी।

३० जून १८१९ ई०को हमारी यह विजयी, गर्व्वोन्मत्त सिक्ख-सेना काश्मीरके क़िलेके पास जा पहुँची। क़िलेमें बहुत थोड़ी

सेना थी, अतएव उसे जीतकर नगर लेलेनेमें कुँवर खड्गसिंह-को तनिक भी कठिनाईका सामना नहीं करना पड़ा और उन्होंने गढ़पर अपनी जीतका झण्डा गाड़ दिया।

काश्मीरपर रणजीतसिंहका अधिकार होते देख, उसके समीपवर्त्ती कुछ राजागण रुष्ट हुए और सिक्ख-सरदारोंसे युद्ध करना चाहा, पर मिश्र दीवानचन्दने उन्हें बीचमेंही घर दबाया जिससे उन्हें अधिक उत्पात करनेकी हिम्मत न पड़ी।

काश्मीरकी प्रजा तो यह चाहती ही थी, कि—किसी तरह अत्याचारी जब्बारखाँका शासन दूर हो एवं कोई न्यायनिष्ठ राजा हमारा शासन करे, इसलिये प्रजाने भी अवनत मस्तकसे महा-राजा बहादुरका स्वामित्व स्वीकार कर लिया।

अनन्तर कुँवर खड्गसिंह पिताकी आज्ञासे मिश्र दीवान-चन्दको राज-प्रतिनिधि बना और काश्मीरका शासन-भार उनके हाथमें सौंपकर सरदार हरिसिंहके साथ लाहौर लौट आये।

इस घटनाके कुछही दिनों बाद, काश्मीर-प्रदेशके समीप-वर्त्ती द्राइन्दा क़िलेके सुलतान पाइन्दाखाँने जब सुना, कि—अब काश्मीर नव्वाब जब्बारखाँके हाथसे निकलकर पञ्जाब-केशरी महाराजा रणजीतसिंहके अधिकारमें चला गया है, तो उसे बड़ा दुःख हुआ एवं प्राण-भयसे भागे हुए जब्बारखाँको अपने पास बुला, महाराजा बहादुरसे उसका बदला लनेकी तैयारी करने लगा।

धीरे-धीरे यह संवाद महाराजा रणजीतसिंहके कानोंतक पहुँचा। उन्होंने मिश्र दीवानचन्दकी मददके लिये दीवान

मोतीचन्दको भेज, काश्मीरका शासन दृढ़ कर दिया एवं सरदार हरिसिंहको पाइन्दाखाँके दमनके लिये द्राइन्दागढ़ भेज दिया। सरदार हरिसिंहने एकही धावेमें पाइन्दाखाँकी सेनाको तहस-नहस कर दिया और मय जब्बारखाँके पाइन्दाखाँको पकड़ कर महाराजा बहादुरके सामने ला खड़ा किया। इस घटनासे द्रान्दागढ़में भी पञ्जाब-केशरी महाराजा रणजीतसिंहका ही राज्य स्थापित होगया।

हमने यहाँपर काश्मीरके सिक्ख-कृत विजय सम्बन्धी वृत्तान्तका सारांश इसलिये लिपिबद्ध कर दिया है, जिससे प्रस्तुत पुस्तकके पाठक महाराजा बहादुरकी बढ़ी-चढ़ी वीरताका कुछ अनुमान कर सकें।

विरोधियोंका दमन।

काश्मीर-विजयके कुछही दिनों बाद पंजाब-प्रान्तके हज़ारा, पेशावर और बक्खरगढ़ आदि स्थानोंकी मुसल्मान प्रजाने राज-विद्रोह मचाना प्रारम्भ किया एवं धर्म्म-रक्षाकी दुहाई दे, छोटे-मोटे स्वार्थपर नव्वाबोंने अफगान, यूसुफजई और गाजी आदि जातियोंको महाराजा रणजीतसिंहके विरुद्ध उभारा। जब यह समाचार महाराजाके पास पहुँचा, तब उन्होंने कहीं हरिसिंह, दीवानचन्द, मोतीराम, और कहीं अपने राजकुमारोंको भेजकर उनका दमन कराया। विद्रोहियोंके साथ महाराजा बहादुरका युद्ध एक नहीं, अनेक समयोंपर इस भीषण रूपसे हुआ, कि इतिहासोंमें उसका वर्णन पढ़नेसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। परन्तु महाराजा बहादुरपर उस समय विजय-लक्ष्मी पूर्ण रूपसे प्रसन्न थी, अतएव वे जिधर दृष्टि डालते, उधरही उनकी जय होती थी।

इस प्रकार महाराजा रणजीतसिंहका प्रताप-सूर्य्य दिन-दिन प्रचण्ड होता गया और उनके तेजसे एकबार समस्त भारतवर्ष चौंधिया गया। यहाँतक, कि—उस समयकी अङ्गरेज़ सरकार भी उनके नामसे भय खाती थी।

सतलजके इसपारके इलाके।

सतलजके इसपारके इलाकोंसे, उन इलाकोंका अभिप्राय है, जो फिरोजपुरसे दिल्लीतक चले गये हैं। रणजीतसिंहके समयमें इन इलाकोंका बहुतसा भाग सिक्ख-सरदारों,जैसे महाराजा पटियाला, झींद, इत्यादिके और कुछ अङ्गरेज़ोंके अधिकारमें था। बहुतसा भाग और किसी राज्य या रियासतमें मिला हुआ था। रणजीतसिंह चाहते थे, कि कुल खालसा-सरदारोंको अपने अधीन कर अपने साम्राज्यको दिल्लीतक पहुँचा दें; किन्तु इस विचारमें उन्हें सफलता प्राप्त न हुई। इसका यह कारण था, कि—उनको, इन विचारोंके कार्य्यमें परिणत करनेमें अङ्गरेज़ बाधक हुए। अङ्गरेज़-गवर्नमेण्ट और महाबली पञ्जाब-केशरीके बीच इस विषयकी जो सन्धि हुई,उसका वर्णन निश्चित रूपसे मनोरंजक होगा।

हम ऊपर कह चुके हैं, कि महाराजा बहादुरके, किसी राज्यको हस्तगत करनेमें, कोई भूतपूर्व्व सन्धि या परामर्श आदि बाधक न होते थे। जब वे किसी राज्यपर अपनी दृष्टि डालते थे, तो बिना किसी बातका विचार किये उसे चट गड़प कर लेते थे। इस दशामें महाराजा रणजीतसिंहका, अङ्गरेज़-सरकारसे, सन्धिका सदैव निर्वाह करते रहना, अत्यन्त आश्चर्य्य-जनक बात थी। पर इसका एक कारण था। वह यह है, कि महाराजा साहबके हृदयपर अङ्गरेजोंका बल, पौरुष और

चातुर्य्य पूर्ण-रीतिसे अङ्कित होगया था * । प्रायः वे भारतका 'मानचित्र' (नक्शा) देखकर कहा करते थे, कि—एक दिन ऐसा आयेगा, जब समस्त भारतका 'मानचित्र' लाल-रङ्गसे रङ्ग जायेगा, † अर्थात् सारा भारत अङ्गरेज़ोंके हाथमें चला जायेगा ! अङ्गरेज-सरकार इनके राज्यपर इसलिये हाथ नहीं फैलाती थी, कि महाराजका स्वतन्त्र रहना उसके लिये उत्तर-पश्चिमके आक्रमणकारियोंको रोकनेके लिये एक महान् रुकावट थी और महाराजा साहब इसलिये न बोलते थे, कि वे अङ्गरेज़-सरकारको अपनेसे कम बली नहीं समझते थे,पर तो भी सिक्खोंका राज्य क्यों नष्ट होगया ? इसका कारण यह है, कि स्वयं सिक्ख-राज्यही आपसकी फूट और वैमनस्यके कारण जर्ज्जरित और पतित होगया था, न कि अङ्गरेज-सरकार उसे अपने हस्तगत कर सकती या करना चाहती थी ।

उन दिनों 'जार्ज टामसन' नामक एक वीर अङ्गरेज़ उत्तरीय भारतमें अपना एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहता था और उसको इस कार्य्यमें कुछ सफलता भी प्राप्त हुई थी, पर सतलजके इस पारके सिक्ख-सरदारोंने उसको ऐसी कड़ी

---

* यहाँ पर अङ्गरेज-लेखकोंने अपनी जातिका पक्ष लिया है, परन्तु वास्तवमें यह बात न थी । महाराजा बहादुर अपने बलके मुकाबिले किसीको कोई वस्तु न समझते थे । —लेखक

† हिन्दुस्तानके नक्शेमें अङ्गरेजोंकी अमलदारी लाल रंगमें दिखलायी गयी है । —लेखक

शिकस्त दी, कि उसका सब मन्सूबा धूलमें मिल गया। वे सरदार महाराष्ट्र लोगोंसे मिले हुए थे और जब दिल्लीमें मरहठों और अङ्गरेज़ोंसे युद्ध हुआ, तो वे मरहठोंके सरदार जेनरल 'बूरकीन' की सहायताकेलिये आये। अङ्गरेज़ोंके 'जेनरल लेक' ने ११ वीं सेप्टेम्बर सन् १८०३ ई० को उन्हें कठिन रूपसे पराजित किया। इसके उपरान्त सन् १८०४ ई० में भी ये सिक्ख-सरदार अङ्गरेज़-गवर्नमेण्टको बहुत दुःख देते रहे और उन्होंने दिल्ली तकके सारे इलाकोंको लूट-पाट कर सत्यानाश कर डाला। सन् १८०४ ई० के दिसम्बर मासकी १८ वीं तारीखको 'कर्नल बर्न'ने उनको ऐसा परास्त किया, कि अन्तमें सबको यमुना-पार भाग जाना पड़ा और उनके दो मुखिया, राजा फागसिंह झींदवाला और भाई लालसिंह (कैथलका राजा) अङ्गरेज़ी फ़ौजमें मिल गये और अन्ततक अङ्गरेज़ोंके सच्चे मित्र बने रहे।

अक्टूबर सन् १८०४ई०में 'जसवन्तराव होलकर' दिल्लीके युद्धमें "जेनरल अकरोली' और 'करनल बर्नसे' बेतरह पराजित हुए और इसके दो मास बाद फतहगढ़ और डीगमें मरहठोंने अत्यन्त हानिके साथ 'जेनरल लेक' और 'फ्रेजर'से बड़ी कड़ी शिकश्त खायी। जसवन्तरावकी कुल फ़ौज तितर-बितर होगयी और जब उनको सेंधियांसे सहायता न मिली, तो वे पटियाला इसी अभिप्रायसे आये, पर जब उन्होंने भी सहायता न दी, तो अन्य खालसा-सरदारोंने भी उनकी मदद करनेसे मुँह मोड़ लिया। सन् १८०५ ई० में 'लार्ड लेक' होल्करको जीतनेके निमित्त पुनः

युद्धक्षेत्रमें उतरे और होल्कर अमृतसरमें महाराजा रणजीत-सिंहसे सहायता लेनेके लिये आये, किन्तु फतहसिंह अहलूवालिया और झींदके राजाने रणजीतसिंहको ऐसा करनेसे मना किया और कहा, कि यदि होल्करको सहायता दोगे, तो अङ्गरेज़-बहादुरसे शत्रुता करनी पड़ेगी। लार्ड लेकने व्यासातक होल्करका पीछा किया और अन्तमें उससे सन्धि करली। इसी समय रणजीतसिंह और अहलूवालियोंसे भी अङ्गरेज़ोंकी सन्धि होगयी। इस सन्धिके अनुसार यह तय पाया, कि होल्करको अमृतसरसे निकाल दो तथा उनके साथ फिर किसी प्रकारका सम्बन्ध न रक्खो और न अर्थ तथा फ़ौजसे ही कभी सहायता करो। इसपर अङ्गरेज़ोंने वादा किया, कि जबतक रणजीतसिंह अङ्गरेज़-बहादुरके शत्रुओंसे न मिलेंगे और न उनके विरुद्ध कोई युद्ध करेंगे, तबतक उनके राज्यमें अङ्गरेज़ी फ़ौज न जायेगी और न उनके अधिकारपर हस्तक्षेप ही करेगी।

इस सन्धि-पत्रके अनुसार होल्कर पंजाबसे निकाले गये और रणजीतसिंहको सतलजके उत्तर विजय करते रहनेमें कोई रुकावट न रही। पर सतलजके इस पारकी रियासतोंके निमित्त कोई सन्धि न हुई। सन् १८०६ ई० की ग्रीष्म ऋतुमें फुलकिया सरदारोंके बीच झगड़ा उत्पन्न होगया, जिससे महाराजा रण-जीतसिंहको उनके इलाकोंपर आक्रमण करनेका अच्छा मौक़ा मिल गया।

सिक्खोंकी रियासतों और दिल्लीके बीचके इलाकोंकी दशा,

जो अङ्गरेजोंने सन् १८०३ ई० में प्राप्त किये थे, अत्यन्त ही शोचनीय थी। पर सिक्ख-सरदारोंके ही उत्पातसे, रणजीत-सिंहके राज्यमें भी कुप्रवन्ध और अवनतिने घर कर लिया था। अन्तको रणजीतसिंहके चाचा भागसिंह झींदवालेने उनको, अपने और महाराजा पटियालाके बीच झगड़ेका निपटारा करनेके लिये वुला भेजा। रणजीतसिंह जुलाई सन् १८०६ ई० में बहुत-सी फ़ौज लेकर सतलज पार उतर गये। महाराजाकी यह कार्र-वाई अङ्गरेजोंके वड़े मानसिक कष्टका कारण हुई और उन्होंने अपने दुर्ग कर्नालको खूब दृढ़ कर लिया। किन्तु रणजीतसिंहने लुधियानेके जिलेको लेलेनाही उचित समझा और अङ्गरेज़ी राज्यकी ओर ध्यान न दिया। लुधियानेमें मुसलमानोंका एक प्राचीन कुल शासन करता था और जिस समयका वर्णन किया जा रहा है, उस समय दो विधवा औरतें राज गद्दीपर आसीन थीं। रणजीतसिंहने उनके मालमते और जागीरपर अधिकार कर लिया। इस कार्य्यमें यद्यपि महाराजा साहवने वड़ी निर्दयताका परिचय दिया, तथापि उस समय ऐसा करना ही उचित था।

दूसरे वर्ष रणजीतसिंह अपने सेनापति मोहकमचन्दके साथ एक वड़ी भारी फ़ौज लेकर पटियाला आये और राजा साहव-सिंह (पटियाला वाले) तथा उनकी स्त्री (प्रसिद्ध रानी आस-कुँअर) के बीचके झगड़ेकी निवृत्ति की। पूर्वोक्त रानी साहवाने महाराजा रणजीतसिंहको वहुत सा धन वतौर घूसके दिया था, इसलिये महाराजाने उसके साथ वहुत दवकर कार्य्य किया।

जब रणजीतसिंह वहाँसे लौटे, तो उन्होंने फिरोजपुरकी बहुतसी रियासतें, जैसे नारायणगढ़, डोनीमोरण्डा इत्यादिको अपने अधिकारमें करके, अपने सरदारोंके बीच बाँट दिया।

सतलजके इस पारके सरदारोंको अब अच्छी तरह ज्ञात हो-गया, कि अपने झगड़ोंमें रणजीतसिंहको बुलाना कोई बुद्धिमत्ताका कार्य्य नहीं है। इसका यह कारण था, कि रणजीतसिंह स्वयं उनके इलाकोंको लेनेके लिये प्रस्तुत रहते थे। इसी समय मार्च सन् १८०८ ई० में राजा-झींद, राजा-कैथलका भाई लाल-सिंह और राजा साहबसिंह पटियालावाले दिल्लीमें अङ्गरेज-रेजिडेण्टके कमाण्डर 'मिष्टर सिटिन' की सेवामें उपस्थित होकर प्रार्थी हुए, कि वे उनको अपनी संरक्षकतामें लेलें। पर अङ्गरेज़ोंको, महाराजा रणजीतसिंहके राज्य बढ़ानेकी प्रणालीको रोकनेकी युक्ति न सूझती थी! क्योंकि उन्हें यह ज्ञात था, कि वे समस्त सिक्ख-राजाओंको अपने साम्राज्यके अन्तर्गत लाया चाहते हैं। अङ्गरेज़-सर्कार रणजीतसिंहके साथ मैत्रीके सम्बन्धोंको एकाएक तोड़नेसे हिचकती थी, क्योंकि ऐसा करने-से सम्भव था, कि रणजीतसिंह फ्रान्सवालोंसे मैत्री कर लेते।

इसी समय फ्रान्सके प्रसिद्ध सम्राट् "नेपोलियन बोनापार्ट"* ने एशियामें एक बड़ा भारी साम्राज्य स्थापित करनेका विचार

---

* "नेपोलियन बोनापार्ट"की सचित्र बड़ी जीवनी हमारे यहाँ मिलती है। इसमें नेपोलियनकी समस्त लड़ाइयोंका हाल बड़ी खूबीसे लिखा गया है। सुन्दर-सुन्दर ११ चित्र भी हैं। दाम २।) रुपया।

किया था, पर सन् १८०८ ई० तक उसके सारे विचारोंपर पानी फिर गया। किन्तु इतना होनेपर भी अङ्गरेजोंको उसकी ओरसे बड़ा भारी खटका लगा रहता था। निदान अङ्गरेजोंका एक दूत 'सी० टी० मेटकाफ'ने महाराजा रणजीतसिंहसे नयी सन्धि करनेके निमित्त लाहौरकी ओर प्रस्थान किया।

इस समय महाराजा बहादुरकी दशा सन्तोषजनक न थी। उनको उत्तरकी ओरसे अफगानों, पञ्जाबमें नये विजय किये हुए सरदारों, तथा जो सरदार अधीन न थे, उनकी शत्रुताका प्रत्येक समय खटका लगा रहता था। वे अङ्गरेजोंके बल तथा कौशलको भली भाँति जानते थे; किन्तु पूर्वोक्त कारणोंसे उनकी इस दशासे लाभ न उठा सकते थे। तिसपर भी यह विचार वे सदैव अपनी दृष्टिके आगे रखते थे, कि अपने साम्राज्यके समस्त खालसा सरदारों और जागीरदारोंको मिलालें; क्योंकि सतलज के दक्षिणके गत युद्धोंसे यह स्पष्ट हो गया था, कि फुलकियान-के राजा और मालवाके सरदार आपसकी फूटके कारण इतने बलहीन होगये हैं, कि वे उनका सामना नहीं कर सकते।

जब रणजीतसिंहने अङ्गरेज़ी दूतके आनेका समाचार पाया, तो वे बहुत घबराये। किन्तु उन्होंने निश्चय कर लिया, कि सन्धि होनेके पूर्व अपनी अवस्था दृढ़ करलें और इसी अभिप्रायसे उन्होंने सतलजके इस पारकी रियासतोंपर आक्रमण करनेके लिये 'कसूर' में एक बड़ी फ़ौज तैयार कर ली। मेटकाफ साहब पटियालाके राजासे भेंट करते हुए ११ सेप्टेम्बर सन् १८०८

को 'कसूर' पहुँचे और उन्होंने अङ्गरेज़-सरकारके इच्छानुसार महाराजा रणजीतसिंहसे प्रार्थना की, कि यदि 'नेपोलियन बोना-पार्ट' भारतपर आक्रमण करे, तो वे अङ्गरेज़-सरकारकी सहायता कर उसको पीछे हटावें। महाराजा रणजीतसिंहने यह बात स्वीकार करते हुए कहा, कि इस सन्धिके बदलेमें मैं भी अंगरेज़-सरकारसे यही इच्छा रखता हूँ, कि वह मुझे सारी सिक्ख-जातिका प्रधान स्वीकार करले। मेटकाफ साहब इस बातका निपटारा, बिना अपनी गवर्नमेण्टकी अनुमतिके नहीं कर सकते थे, इसलिये वे चुप रह गये।

इसके बाद महाराजने नदी पारकर, फरीदकोटपर अपना अधिकार जमा लिया और फिर मलेरकोटलाके नव्वाबसे बहुतसा कर मांगा। मेटकाफ साहब रणजीतसिंहके साथ ही थे। पर जब महाराजने अम्बालेपर जो,इन रियासतोंके ठीक सामने था और अंगरेज़ोंके अधिकारमें आया चाहता था, आक्रमण करनेका विचार किया, तो वे फतहाबादकी ओर चले गये।

इसी बीचमें नेपोलियनके भारतपर आक्रमण करनेका खटका मिट गया और अंगरेज़ोंने रणजीतसिंहके साथ इस मिथ्या भयके आधारपर सन्धि करना व्यर्थ समझा। अतएव अङ्गरेज़ी राजदूत मेटकाफ साहबने महाराजा बहादुरको सूचना दी, कि सतलजके दक्षिणीय प्रदेशोंपर आपका स्वत्व हमारी गवर्नमेण्ट स्वीकार न करेगी। महाराष्ट्र-शासनका उत्त-राधिकारी बृटिशसिंह भारतमें है और जब मरहठोंके साथ

हमारा युद्ध हो रहा था, तब आपहीने अपने और हमारी सर्का-रके राज्यकी सीमा सतलज नदी मानी थी। तभीसे हमारी सर्कारने सतलजके इस पारके देशोंका कर क्षमाकर उन्हें अपने अधीन कर लिया है। आपने अङ्गरेज़ी दूतके साथ जिस तरहका व्यवहार किया है, वह जातीय व्यवहारकी नीति-रीतिके सर्वथा प्रतिकूल है। जब परस्परमें पत्र-व्यवहार द्वारा बातचीत हो ही रही थी, तब आपका सतलजके इस पारके देशोंपर हाथ फैलाना उचित नहीं था। आपको उचित है, कि इस पत्र-व्यवहारके आरम्भसे जो इलाके आपने लिये हैं, उनको लौटा दें और सतलजके दक्षिणसे अपनी फौज हटालें।

इसके माननेमें महाराजा बहादुरने बहुत दिनों तक आगा-पीछा किया, यहाँतक, कि अङ्गरेजोंसे लड़नेके लिये अपनी फ़ौज एकत्र करने लगे। अङ्गरेज़-सरकार भी बेख़बर न थी, उसने भी एक बड़ी फ़ौज अम्बालेकी छावनीमें भेज दी। पर अन्तमें महाराजाने फकीर अजीजुद्दीन इत्यादिकी रायसे इन शर्तोंको मान लिया और अप्रेल सन् १८०६ ई० से अङ्गरेज़-सर-कार और महाराजा बहादुरमें परस्पर मैत्रीकी सन्धि हो गयी। इस सन्धिको महाराजा रणजीतसिंहने ३० वर्षतक ज्यों-का-त्यों निवाहा और दोनों सरकारें मित्र-भावसे अगल-बगल राज्य करती रहीं।

महाराणा रणजीतसिंह तथा अंगरेजोंमें मित्रताकी वृद्धि ।

मैत्री-द्योतक सन्धि-पत्रके लिख जानेके उपरान्त अङ्गरेज़ों और महाराजा रणजीतसिंहके मध्य मैत्रीके सम्बन्ध और भी दृढ़ हो गये। सन् १८२७ ई० में गवर्नर 'लार्ड एमहर्सन साहब' शिमलेमें आकर ठहरे। महाराजा बहादुरने लाट साहबकी सेवामें, इङ्गलैण्डके सम्राट् के निमित्त एक अत्यन्त सुन्दर काश्मीरी शालका खेमा भेजा। इसके उत्तरमें लाट साहबने अपने अफसरोंके द्वारा पञ्जाब-केशरीके निकट भेंटकी अनेक उत्तमोत्तम सामग्रियाँ भेजीं ! सन् १८२८ ई०में 'लार्ड एमहर्सन'ने भारतसे इङ्गलेण्ड लौटकर, सम्राट् के दर्बारमें रणजीतसिंहकी भेंट उपस्थित की। सम्राट् ने भी उचित समझा, कि हमारी ओरसे भी महाराजा बहादुरको उत्तमोत्तम वस्तुएँ भेंटकी जायें। अतएव गाड़ीके घोड़ोंकी एक सुन्दर जोड़ी, चार घोड़ियाँ और एक सांड़ घोड़ा, इङ्गलैण्डके गवर्नर नरलके द्वारा उनकी सेवामें भेजा गया। इन वस्तुओंको लेकर 'लेफ्टिनेण्ट गवर्नर साहब' सिन्धकी राहसे महाराजा बहादुरके दर्बारमें पहुँचे। महाराजाने उनकी बड़ी ख़ातिर की। इसी बीचमें "लार्ड विलियम बेण्टिङ्क" भारतके गवर्नर जेनरल नियत हो चुके थे। उनको एलचियोंकी ख़ातिरदारीसे प्रकट हो

गया, कि महाराजा साहब हमलोगोंसे अच्छा बर्ताव करते हैं अतएव उन्होंने 'कप्तान वेड साहबसे'से जो महाराजाके दर्बारमें उनकी सम्मतिसे गये हुए थे, कहला भेजा, कि महाराजासे हमारी मुलाक़ातका ज़िक्र करो। महाराजाने भारतके गवर्नरसे भेंट करनेका वचन दिया। इस मुलाक़ातका प्रबन्ध सतलजके दोनों ओर बड़ी धूमधाम और ठाटबाटसे "रूपड़" नामक स्थानमें किया गया।

महाराजाकी फ़ौज सतलजके उत्तरकी ओर और अङ्गरेज़ी फ़ौज दक्षिणकी ओर थी। बड़ा ही आनन्दका समय उपस्थित हुआ। पहले महाराजा रणजीतसिंह गवर्नर जेनरल बहादुरसे, सतलजके दक्षिण ओर भेंट करने गये, फिर गवर्नर जेनरल साहबने महाराजा साहबके कैम्पमें जाकर बदलेको मुलाक़ात की। यह धूमधाम एक सप्ताह तक बराबर ज़ारी रही। महाराजा रणजीतसिंह अङ्गरेज़ी फ़ौजकी क़वायद और विशेषकर अङ्गी-बैण्ड बाजेसे अत्यन्त प्रसन्न हुए।

अङ्गरेज़-गवर्नमेण्टकी ओरसे महाराजा बहादुरको कुछ बहुमूल्य रत्न, बर्माका एक सुन्दर हाथी और दो अत्यन्त उत्तम अश्व (घोड़े) भेंटमें दिये गये। इसके अतिरिक्त अश्वारोही (घोड़चढ़े) तोपख़ानेकी दो 'नौ पाउण्डर' तोपें मय घोड़े और साज-सामानके साथ दीं और एक लटकनेवाले पुलका नमूना भेंट किया गया। रणजीतसिंहने प्रसन्नतापूर्वक यह भेंट स्वीकार की और अङ्गरेज़ गवर्नमेण्टको बहुतसे उत्तमोत्तम अश्व भेंट-

स्वरूप प्रदान किये। निदान यह अत्यन्तही भड़कीली मुलाक़ात पहली नवम्बर सन १८३१ ई० को समाप्त हुई और दोनों ओरकी फ़ौजें अपने-अपने राज्योंमें लौट गयीं।

महाराजा रणजीतसिंहका दर्बार।

महाराजा बहादुरकी सफलताका मुख्य कारण यह था, कि उन्होंने अपने दर्बारमें सुयोग्य सरदारों तथा बुद्धिमान अफसरोंका एक ज़बर्दस्त दल एकत्र कर लिया था और वे प्रत्येक सरदार तथा अफसरके विषयमें भली भाँति जाँच कर लिया करते थे, कि वह उनके राजकीय कामोंमें कहाँतक सहायता दे सकता है। वे इन सरदारोंके गुप्त चालचलनकी तनिक भी चिन्ता न करते थे। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं, कि महाराजा बहादुर अत्यन्त स्वार्थी मनुष्य थे, पर जो मनुष्य दर्बारमें उत्तम परामर्श वा युद्धक्षेत्रमें वीरताका परिचय देता था, वह उनसे उत्तमोत्तम परितोषिक भी प्राप्त करता था।

जो मनुष्य राजकीय भेद खोल देता वा अन्य प्रकारसे राज्यका अशुभचिन्तक जँचता था, वह महाराजाकी दृष्टिमें तुच्छ हो जाता था। रणजीतसिंहने अपने सरदारों और अफसरोंको बड़ी-बड़ी जागीरें दे रखी थीं। यद्यपि रणजीतसिंहके सरदार और अफसर लोग धर्मके कारण आपसमें प्रायः बैर-प्रीति रखते थे, पर महाराजा साहब इन विषयोंसे रहित थे। वे अपनी प्रजा-

मात्रको, चाहे वह किसी धर्म्म या सम्प्रदायकी हो, समान भावसे देखते थे। उनके उन सरदारोंने, जिन्होंने निष्पक्ष भावसे राज्यकी सेवा की, उनके हाथसे इतना धन और वैभव प्राप्त किया, कि वे मालामाल हो गये। जैसे, सरदार हरिसिंह, जमादार खुशहालसिंह, राजा साहबदयाल, राजा रलाराम * दीवान अयोध्याप्रसाद और पण्डित शंकरनाथ तथा अन्य बड़े-बड़े अफसर लोग जातिके ब्राह्मण थे, पर ये लोग किसी धर्म्म और जातिसे विद्वेष न रखते थे।

---

*राजा साहबदयाल और राजा रलाराम जातिके सारस्वत ब्राह्मण थे। इन लोगोंके वंशधर इस समय भी काशी तथा पंजाबमें वर्तमान हैं और राजा रलारामका प्रसिद्ध घाट अब तक काशीमें भागीरथीके तटपर शोभायमान है।

—लेखक।

रणजीतसिंहकी आकृति।

कैरन ह्यूगलने रणजीतसिंहका ऐसा उत्तम चित्र उतारा है, कि उसको देखनेसे यही जान पड़ता है, कि महाराजा साहब मानो हमलोगोंके आगे खड़े हैं। वे मोटे और साधारण रूपवाले थे। उनकी बायीं आँख बन्द थी। दाहिनी आँख सतेज और चारों ओर घूमा करती थी। रंग भूरा था। मुँहपर शीतलाके चिह्न बने हुए थे। नाक छोटी, सीधी और कुछ मोटी थी। दाढ़ीके बाल सुफेद और काले थे; शीश बड़ा और सुडौल था और वे सरलतापूर्वक हिल न सकते थे। उनकी गर्दन मोटी और दृढ़ थी। भुजाएँ और जाँघें पतली थीं। उनके छोटे-छोटे सुन्दर हाथ, यदि किसीका हाथ पकड़लेते थे, तो घण्टोंतक उसी तरह खड़े बातें करते रहते थे और प्रायः उसकी उँगलियाँ दबाया करते थे, जिससे उनके दिलकी घबराहट प्रकट होती थी। वे कुर्सीपर पलथीमारकर बैठते थे। जब वे घोड़ेपर सवार होते थे, तब उनके मुँहपर एक आश्चर्य्यजनक तेज़ झलकने लगता था। महाराजाकी वृद्धावस्थामें उनके एक ओरके अङ्गमें लकवा मार गया था, तिसपर भी वे भली भाँति घोड़ेको वशमें रखते थे। वे दृढ़, फुर्तीले, वीर, सहनशील और दिन-दिन भर घोड़ेकी पीठपर बैठनेवाले एक पुरुष-रत्न थे!

महाराजा साहबका स्वभाव।

महाराजा साहब मृगया (शिकार) के बड़े प्रेमी थे। घोड़ोंको इतना प्यार करते थे, मानो उनपर आशिक़ थे। स्वयं अपने निमित्त एक बड़ा घुड़साल रखते थे, जिसमें भारत, अरब और ईरान इत्यादि देशोंके मूल्यवान् घोड़े भरे रहते थे। आपको तलवारसे लड़नेका खूब अभ्यास था। नेजाबाजी और तलवार चलानेमें अद्वितीय थे। कपड़ा सादा पहनते थे। जाफरानी रंगका वस्त्र प्रायः धारण करते थे। मुख्य-मुख्य अवसरोंको छोड़ कर और कभी रत्नादि वा आभूषण नहीं पहनते थे। यद्यपि वृद्धावस्थामें रोगग्रस्त रहते थे, पर सारा दर्बार उनके रोबसे थर-थर काँपता था। फ़क़ीर अजीजुद्दीन जब शिमलेमें "लार्ड विलियम वेण्टिङ्क"से मिलने आये, तो एक अङ्गरेज़ अफसरने उनसे पूछा,— "महाराजा बहादुर किस आँखके काने हैं?" इसपर आपने जवाब दिया, कि "महाराजाके रोबसे, जनाब! आज तक मैं सिर उठा कर उनके चेहरेकी ओर देख नहीं सका, जो इस बातका फैसला करूँ, कि वे काने हैं अथवा दोनों आँखवाले!"

परिशिष्ट ।

महाराजा रणजीतसिंह बहादुर यद्यपि बड़े स्वार्थी थे, किन्तु उनके जैसे लोगोंके लिये जो गुण आवश्यक होते हैं, वे उनमें कूट-कूटकर भरे थे। वे वीरोंकी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे, परन्तु दुष्टजनोंके लिये काल थे। वे राजनीतिमें चतुर थे। उनको राजनैतिक चालें बाज़ मौकोंपर ऐसी अच्छी पड़ती थीं, कि बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ लोग भी दाँतों उँगली काटते थे। राजा साहब धार्म्मिक भी पूरे थे। इतिहासोंमें उनको दानशीलताका तो कहीं उल्लेख नहीं हुआ, पर ऐसे भी लोग अबतक काशी तथा पञ्जाबमें वर्त्तमान हैं, जो महाराजा बहादुरका समस्त वृत्तान्त आँखों देखा सा बता सकते हैं और उन्हीं वृद्ध महापुरुषोंका कथन है, कि-हिन्दू अनाथ विधवाओंकी सहायताके लिये उन्होंने गुप्त रूपसे-कुछ ऐसी स्त्रियाँ नियत करदी थीं, जो उनके घर-घर जाकर-महाराजाकी तरफसे उन्हें द्रव्यकी सहायता पहुँचाया करती थीं। पर हाय! मौतने उन्हें भी न छोड़ा और हिन्दुओंका उज्ज्वल और उत्तप्त 'तारा' सिक्ख-शिरोमणि "पञ्जाब-केशरी" सदाके लिये अस्त हो गया !!!

कहते हैं, महाराजा बहादुरके उत्तराधिकारी योग्य न हुए। यद्यपि रणजीतसिंहका बड़ा पुत्र खड्गसिंह बड़ा वीर था, परन्तु पिताकी भाँति उसमें प्रतापपूर्ण प्रतिभाका अभाव था। उसका

पुत्र नौनिहालसिंह ऐय्याश और बदचलन निकला। ये दोनों थोड़ेही दिनोंमें मारे गये !

युवराज शेरसिंह, जो महाराजा बहादुरका दूसरा पुत्र और अत्यन्त दुष्ट था, अपने पुत्र सहित सिन्धानवालिया सरदारोंके हाथसे मारा गया ! और दलीपसिंह, जो महाराजाकी मझली रानीके उदरसे उत्पन्न था, सिक्खोंकी हारके बाद अङ्गरेज़ोंकी शरणमें आगया और भारत-गवर्नमेण्टके इच्छानुसार विलायत भेज दिया गया !

तात्पर्य्य यह, कि सिक्खोंका प्रभाव जिस प्रकार देखते-देखते पञ्जाब भरमें फैल गया था, उसी प्रकार बहुत शीघ्र नष्ट होगया ! महाराजा रणजीतसिंह एक प्रतापी पुरुष थे। उन्होंने स्वयं अपनी बुद्धि तथा कौशलसे अनन्त मान-मर्य्यादा और प्रतिष्ठा प्राप्त की थीं। उनकी आँखें बन्द होतेही वह सब धूलमें मिल गयी।

आजसे पाँच हज़ार वर्ष पूर्व महाभारतके समय, जो फूटका पौधा भारतवर्षमें लगाया गया था, धीरे-धीरे उसकी उन्नति हमारे भारतके सपूत वीर अपने रुधिरसे सींच-सींच कर करते-रहे ! महाराजा पृथ्वीराज और जयचन्दने भी इस पौधेको खूब-पुष्ट किया और सच पूछिये, तो उसी समय आपसकी फूट तथा वैमनस्यके कारण भारतका पतन हुआ और भारत हमारे हाथ-से निकल कर विदेशी वीरोंके हाथमें चला गया !

उन्नीसवीं शताब्दिमें महाराजा रणजीतसिंहने भारतवर्षके एक कोनेमें सिर उठाया था, किन्तु हा ! उनके मरतेही आपसकी

फूटने उनके सम्बन्धियोंके हृदयमें वैमनस्यका विषैला अङ्कुर जमा दिया ! अङ्गरेज़ोंसे युद्ध प्रारम्भ होनेपर, उनकी छोटी रानी 'ज़िन्दा' अङ्गरेज़ोंसे मिल गयी । सिक्ख-सिपाहियोंको रसद और गोली-बारूद आदि देना बन्द कर दिया गया । पर तब भी सिक्ख-वीर भूख-प्यासका कुछ भी ख़याल न कर खूब लड़े और विदेशी वीरोंके दाँत खट्टे कर दिये ! पर इससे हो क्या सकता था ? जब राज-रानीकीही ऐसी इच्छा थी, तब फिर उसे कौन रोक सकता था ? घरकी फूट बड़ी बुरी होती है ! जब इसी घरके शत्रु विभीषणके कारण महाबली, त्रैलोक्य-विजयी रावणका नाश हो गया, तो ये किस गिनतीमें थे । अन्तमें सिक्ख-सरदार पराजित होगये । पञ्जाबके स्वतन्त्र-राज्यका पतन हुआ और पञ्जाबवासियोके पैरोंमें सदाके लिये पराधीनताकी वेडी पड़ गयी !!!

घटना-चक्र

सचित्र जासूसी उपन्यास।

इस उपन्यासमें अङ्गरेज-जातिकी पारस्परिक शत्रुताका बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा गया है। "लार्ड पेमब्रोक" नामी एक सम्भ्रान्त अङ्गरेज किस प्रकार शत्रुओंसे सताये जाकर अपनी अद्वितीय सुन्दरी स्त्री "क्लिओपेट्रा" सहित भारतवर्षमें भाग आये, किस प्रकार उनके शत्रु-दलने भारतमें भी उनका पीछा न छोड़ा, किस प्रकार भारतके सरकारी जासूस "कृष्णजी रघुपन्त" ने शत्रुओंके हाथसे बारम्बार उनकी रक्षा की, किस प्रकार शत्रुओंके जासूस लार्ड पेमब्रोकके दाई-नौकरों तकमें घुस गये, किस प्रकार दुष्टोंके षड्यन्त्रसे लार्ड पेमब्रोकको भयानक खूनी मामलेमें गिरफ्तार हो इङ्गलैण्ड

जाना पड़ा, किस प्रकार रास्तेमें शत्रुओंके जहाजने उनपर आक्रमण किया, किस प्रकार उनकी स्त्री "क्लिओपेट्रा" समुद्रमें फेंक दी गयी, किस प्रकार जासूस र ुपन्तने समुद्रमें कूदकर उनकी स्त्रीका उद्धार किया, किस प्रकार बड़े बड़े जासूसोंकी मददसे "लार्ड पेमब्रोक" को अदालतसे रिहाई मिली, आदि सैकड़ों दिलचस्प घटनाओंका वर्णन है। दाम २।),

जासूसके घर खून

सचित्र जासूसी उपन्यास।

इस उपन्यासमें विलायतके सुप्रसिद्ध जासूस मिस्टर राबर्ट ब्लेककी ऐसी ऐसी जासूसियां दी गयी हैं, कि मारे ताज्जुबके दांतों उंगली काटनी पड़ती है। सुन्दर सुन्दर २ चित्र भी हैं। दाम सिर्फ १।।) है। रेशमी जिल्द २) रु०

पता—आर० एल, बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

शीशमहल

सचित्र ऐतिहासिक उपन्यास।

इस उपन्यासमें भारत-सम्राट "अकबर" के समयकी कितनी ही मनःरंजक घटनाओंका सचित्र बयान किया गया है। सम्राट अकबरकी आज्ञासे सेनापति "इस्कन्दर" का गुप्त भावसे "इंदलगढ़-दुर्ग" पर चढ़ाई करना, भयानक अंधेरी रातके समय चुपचाप दुर्गपर अधिकार जमा कर दुर्गाधिपति 'सोहानी' को कैद करनेकी चेष्टा करना. सोहानीकी वीर-पत्नी "गुलशन" के अपूर्व रूप-लावण्यपर मुग्ध हो कर्त्तव्य-विमुख होना, पतिव्रता गुलशनका इस्कन्दरको धोखा देकर पति सहित दुर्गसे निकल भागना, इस्कन्दरका पीछा करना, सोहानीका पहाड़से गिर कर प्राण त्याग करना,

गुलशनकी फरियाद पर अकबरके दरबारसे इस्कन्दरको फांसीका हुक्म मिलना, गुलशनकी सहायतासे इस्कन्दरका कारागारसे निकल भागना. मालवाधिपति "बाजबहादुर" को गुप्त घातकके आक्रमणसे बचाना, बाज बहादुरका इस्कन्दरको सम्मान सहित घर लेजाना, बाज बहादुरकी सुन्दरी कन्या "रूपिणी" पर इस्कन्दरका मोहित होना, दोनोंमें विवाह होना आदि बहुतही अपूर्व घटनायें दी गयी हैं। मूल्य २), रेशमी जिल्द २॥) रु०

जासूसी कहानियां—यह उत्तमोत्तम जासूसी उपन्यासोंका बड़ा ही अपूर्व संग्रह है। इसमें ५ उपन्यास दिये गये हैं—(१) साढ़े आठ खून, (२) सतीका बदला, (३) नीलाम-घरका रहस्य, (४) घुड़दौड़का घोड़ा, (५) चोर और चतुर। दाम सिर्फ ॥=) आना।

पता—आर, एल, वर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

जासूसी कुत्ता

सचित्र जासूसी उपन्यास

पाठक! हम दावेके साथ कहते हैं, कि आजतक आपने ऐसा उपन्यास न पढ़ा होगा। इसमें प्राडो नामक एक स्वामि-भक्त कुत्तेने कैसी कैसी करामातें दिखाई हैं और अपने गरीब स्वामीको "लार्ड" जैसे बड़े ओहदेपर पहुंचा दिया है, कि पढ़कर तबियत फड़क उठती है। साथ ही इस उपन्याससे यह शिक्षा भी खूब मिल सकती है, कि मनुष्य नेकचलनी और परिश्रमके बलपर कहांतक उन्नति कर सकता है। हमारा एकान्त अनुरोध है, कि यदि आपको उपन्यासोंसे कुछ भी शौक न हो, तो भी आप इसे अवश्य पढ़ें, आपको पछताना न पड़ेगा, क्योंकि इसमें भाग्य-परिवर्त्तनका ऐसा सुन्दर चित्र अङ्कित किया गया है, कि

पढ़कर निकम्मे मनुष्य भी कुछ दिनोंमें अपनी उन्नति कर सकते हैं। इसमें फोटोके सुन्दर सुन्दर ३ चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य १॥), रेशमी जिल्द २) है।

ऐय्यारी और तिलिस्मका अनूठा उपन्यास।

ऐय्यारी और तिलिस्मी खेलोंसे भरा हुआ, आश्चर्य्य व्यापारों और लोम-हर्षण घटनाओंसे डूबा हुआ यह अनूठा उपन्यास पढ़ने ही योग्य है। इस उपन्यासमें ऐसी ऐसी ऐय्यारियां खेली गयी हैं, कि पढ़कर पाठक फड़क उठेंगे। इस उपन्यासके पढ़ते समय पाठकोंका खाना, पीना, सोना, बैठना तक भूल जायगा। इतनेपर भी १००० पेजके बड़े पोथेका दाम, सिर्फ ५) है।

पता—आर, एल, बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

दुर्गादास

वीर-रस-पूर्ण सचित्र ऐतिहासिक नाटक।

बङ्ग-साहित्यमें जिस नाटककी धूम मच गयी थी, बङ्ग-भाषामें जिस नाटकके अनेकों संस्करण हाथों हाथ बिक गये थे, कलकत्तेके बङ्गला थियेटरोंमें जिस नाटकके खेलते समय दर्शकोंको स्थान मिलना कठिन हो जाता था, वही चुहचुहाता हुआ वीर-रस प्रधान ऐतिहासिक नाटक हिन्दीमें छपकर तय्यार है। वास्तवमें यह नाटक नाटकोंका 'मुकुट मणि' है। इसमें "औरङ्गजेब" महाराणा राजसिंह, भीमसिंह, राणा उदयसिंह, शिवाजीके पुत्र महाराष्ट्राधिपति "शम्भाजी" और शाहजादे अकबर, आजम तथा कामबख्श प्रभृतिके इतिहास-प्रसिद्ध भीषण युद्धोंका वर्णन बड़ी ही ओजस्विनी भाषामें किया गया है। मुगल-रमणियों और राजपूत-ललनाओंके चरित्रका खाका बड़ी ही बारीकीसे खींचा गया है। इसे पढ़ और खेलकर पाठक इतने खुश होंगे, कि फिर नित्य ऐसे ही नाटक खेलने और पढ़नेके लिये खोजते फिरेंगे। पहली बारकी छपी कुल कापियां बिक जानेपर हमने इसे दूसरी बार बड़ी सज-धजसे छापा है और हाफटोन फोटोके छपे कितने ही सुन्दर सुन्दर रङ्गीन चित्र भी दिये हैं जिन्हें देखकर आप फड़क उठेंगे। दाम सिर्फ १।।), रेशमी जिल्द बंधीका २) रुपया।

खूनी औरत

इसमें एक डाकरके मेसमेरिजम वा भौतिक-विद्याका बयान ऐसी विचित्रतासे किया गया है कि पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। दाम सिर्फ १।) रु०

अमीरअली ठग सचित्र जासूसी उपन्यास

पाठक महोदयो! आपने शायद पुराने जमानेके भयानक ठगोंका हाल सुना होगा। 'इष्ट इण्डिया कम्पनी' की राजत्वकालमें इन ठगोंका बड़ा ही दौर-दौरा था। ठगों की जोर-जुल्मसे उस समय सरकार और प्रजा दोनों ही तङ्ग आ गयी थीं। ठगोंके बड़े बड़े दल राजसी ठाठ-बाट से दौरा करते फिरते थे और उनकी गोइन्दे मुसाफिरोंको बरगला (बहका) कर अपने गरोहमें ले आते थे। फिर ठग लोग विचित्र ढङ्गसे रूमाल की झटकेसे बातकी बातमें उन्हें फांसी देकर सारा धन लूट लेते थे।

यह उपन्यास बड़ा ही रोचक और शिक्षाप्रद है और हाफटोन फोटोकी बड़ी बड़ी कई तस्वीरें लगाकर खूबही सजा दिया गया है। दाम सिर्फ ॥=)

कैदीकी करामात

यह एक बड़ाही रहस्यपूर्ण सचित्र डिटेकटिभ उपन्यास है, लण्डनके मशहूर जासूस मि० रावर्ट ब्लेकने फ्रान्सके प्रसिद्ध विद्रोही और डाकू "हेनरी गैरक" को कितनी ही बार बड़ी बहादुरीके साथ गिरफ्तार किया था, पर फिर भी गैरक बराबर उनकी आंखोंमें धूल झोंक भागता रहा। इस डाकूने सारे यूरोपमें हलचल मचा रखी थी। यहांतक कि स्वयम् मिष्टर ब्लेकको भी कई बार इससे लांछित होना पड़ा। अन्त में ब्लेकने किस तरह इसे पकड़ कर सजा दिलवाई, यह पढ़कर आप दङ्ग होजायेंगे—दाम १॥) सजिल्द २)

नकली रानी— इसमें एक डाकू-स्त्रीकी वीरता, बुद्धिमानी, चालाकी और दिलेरी आदिका वर्णन बड़ी ही बारीकी से किया गया है। सुन्दर-सुन्दर कई चित्र भी है, दाम सिर्फ १) रु०

पता-आर, एल, वर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

आदर्श चाची

शिक्षाप्रद सचित्र गार्हस्थ उपन्यास।

हिन्दी-संसारमें यह पहला ही उपन्यास छपा है, जिससे समाज या देशका वास्तविक उपकार हो सकता है। स्त्री, पुरुष, बूढ़े, बच्चे, सभी इस उपन्याससे मनोरञ्जनके साथ ही साथ आदर्श शिक्षा भी प्राप्त कर सकेंगे। प्रायः देखा गया है, कि स्त्रियोंके अनबनसे बड़े-बड़े सुखी, सम्पत्तिशाली परिवार तहस-नहस हो गये हैं, बाप बेटेसे छूट गया है, भाई भाईमें विरुद्धता हो गयी है, चाचा भतीजेसे वैर हो गया है और बना बनाया लाखका घर खाकमें मिल गया है। यह उपन्यास इसी प्रकारकी घटनाओंको सामने रखकर लिखा

गया है। एकबार इस उपन्यासको पढ़ लेनेसे आपसके वैर-भाव और दुराग्रह-दम्भका नाश हो जाता है। मूल्य केवल १) रेशमी जिल्द १॥)

राजसिंह

इसमें ६ रंगीन चित्र हैं। — सचित्र ऐतिहासिक उपन्यास।

इसमें वीर-शिरोमणि महाराणा राजसिंह और सम्राट औरङ्गजेबके उस भीषण युद्धका वर्णन है, जिसमें लक्ष्याधिक वीरोंकी प्राणाहुति हुई थी। इस महायुद्धमें राजसिंहने दुर्दान्त औरङ्गजेबको बड़ी बहादुरीसे परास्त कर 'रूप-नगर' की राज-कन्या "चञ्चल-कुमारी" की धर्म्म-रक्षा की थी। इसमें बाद-शाही और राजपूती घरानोंकी बहू-बेटियोंके बहुरंगे चित्रोंको देखकर तबियत फड़क उठती है। दाम २) रंगीन जिल्द २।) रेशमी जिल्द बंधीका २॥)

भीषण डकैती

यह उपन्यास बङ्ग-साहित्यके गौरवस्तम्भ, जासूसी उपन्यासोंके एक मात्र कर्णधार श्रीयुत 'बाबू पांचकौड़ी दे'की सिद्धहस्त लेखनीका सजीव प्रतिविम्ब है। इसमें "मिष्टर रौटलेण्ड" नामक एक अमेरिकन जासूसकी अपूर्व कार्रवाइयों-का ऐसा सुन्दर चित्र खींचा गया है, कि पुस्तक एकबार उठाकर फिर छोड़नेकी इच्छा ही नहीं होती। इस उपन्यासकी प्रत्येक परिच्छेद, प्रत्येक पृष्ठ, प्रत्येक पैराग्राफ, प्रत्येक पंक्ति और प्रत्येक शब्दमें दिलचस्पी और मनोरंजकता कूट कूटकर भरी गयी है। साथ ही सुन्दर सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं। इसमें इस उपन्यासकी प्रधान नायिका 'मिसेस तोराबजी' का एक ऐसा अपूर्व तिनरङ्गा चित्र दिया गया है, कि देखतेही मन हाथसे निकल जाता है। दाम सिर्फ १॥) सजिल्द २) रु०
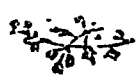
डाक्टर साहब

सचित्र जासूसी उपन्यास

इसमें लण्डनके विख्यातनामा अस्त्र-चिकित्सक, अद्भुत क्षमताशाली 'डाक्टर क्यू' की उस भीषण रसायन-विद्याका चमत्कार है, जिसके द्वारा वह बातकी बातमें जिन्देको 'मुर्दा' और मुर्देको 'जिन्दा' बनाकर अपना इच्छित मतलब गांठ लेता था। इस डाक्टरके गुप्त अत्याचारोंसे सारा इङ्गलैण्ड दहल उठा था और इसे लोग "जादू-विद्या" "भूत-विद्या" आदि समझने लगे थे। अन्तमें वहांके विलक्षण शक्तिशाली सुप्रसिद्ध जासूस 'मिष्टर ब्लेक' ने किस प्रकार उसका रहस्य-भेदकर उक्त 'डाक्तर क्यू' को गिरफ्तार किया है, वह पढ़नेही योग्य है। सुन्दर सुन्दर दो चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ १॥)

जासूसी चक्कर

सचित्र जासूसी उपन्यास

लिखकने इस उपन्यासमें बम्बईकी पारसी-समाजका बड़ा ही विचित्र

रहस्य खोला है। कुछ दिन हुए बम्बईके 'हरमसजी' नामक एक धनाढ्य पारसी सज्जनके खजानेमें विचित्र रूपसे एक लाखकी चोरी हो गयी, साथ ही खुली सड़कपर भाड़ागाड़ीमें एक पारसीयुवक जानसे मार डाला गया। इन दोनों घटनाओंको लेकर बम्बईमें बड़ी हलचल पड़ गयी। खून और चोरीके इलजाममें "रुस्तमजी" नामक एक पारसी गिरफ्तार हुआ। इन दोनों घटनाओंकी जांचके लिये सर्कारकी ओरसे बड़े बड़े ४ जासूस छोड़े गये। जांच धूमधामसे होने लगी, फिर कैसे चार दस जासूसोंने सुन्दरी 'रतनबाई'की सहायतासे पतालगाया, कैसे निरपराध रुस्तमजीने अदालतसे छुटकारा पाया, कैसे नकली विवाहके समय, भीषण व्यक्ति बर्जोरजी गिरफ्तार किया गया, आदि घटनायें इस खूबीसे लिखी गयी हैं, कि बिना समाप्त किये पुस्तक छोड़नेको इच्छा ही नहीं होती। खून, चोरी, जाल, जुआ-चोरी, सभी बातें दिखलाई गयी हैं। हाफटोनके ५ चित्र भी हैं। मूल्य २॥) सजिल्द ३)

सचित्र गो-पालन-शिक्षा

इसमें गो बछड़ोंकी पहचान, पालन, दवायें और दूध बढ़ाने तथा दूधसे बनानेवाले पदार्थोंको बनानेके ऐसे सरल तरीके लिखे गये हैं, कि मनुष्य कुछ ही दिनोंमें मालामाल हो जा सकता है। गाय आदि पालनेवालोंको इसे अवश्य खरीदना चाहिये, २ चित्र भी दिये हैं। दाम केवल ।=) आना।

पता—आर, एल, वर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

सचित्र जासूसी उपन्यास।

इसमें एक मित्रद्रोही डाक्टरकी स्वार्थ-परताका बड़ा ही सुन्दर खाका खींचा गया है। डाक्टरका मित्रकी स्त्रीसे गुप्त-प्रेम कर अन्तमें उसका खून करना, अपनी दूसरी प्रेमिकासे खूनकी बातचीत करते समय डाक्टरके मित्रका छिपकर सुनना और फिर उसे धमकाना, डाक्टर और उसकी प्रेमिकाका मित्रको धोखा देकर फांसीपर लटकाना, मित्रकी लाश का एकाएक गायब हो जाना, दो चोरोंका भेद खोल देनेका भय दिखलाकर डाक्टरको धमकाना, डाक्टरको एकको भट्टीमें झोंककर मार डालना। मुरदा लाशका एकाएक जिन्दा हो जाना, आदि बड़ी आश्चर्यजनक बातें लिखी गयी हैं, दाम सिर्फ १=) जिल्द बंधीका १॥=)

शशिबाला

शिक्षाप्रद जासूसी उपन्यास।

इसमें एक सच्चरित्रा स्त्रीने किस चतुरता, बुद्धिमत्ता और दूर-दर्शितासे अपने कुपथगामी स्वामी और कितनेही मनुष्योंको सुपथगामी बनाया है, वह पढ़ते पढ़ते जी फड़क उठता है। कुमारस्वामीका तिलिस्मी मठ, जोगिनीकी अद्भुत चातुरी, वीरसेनकी विलक्षण वीरता, शशिबालाकी अद्वितीय सुन्दरता आदिका हाल पढ़कर आप अवाक् रह जायंगे। यह शिक्षाप्रद उपन्यास स्त्री, पुरुष, बूढ़े बच्चे सभीके पढ़ने योग्य है। दाम सिर्फ ॥) आना।

जासूसी पिटारा—इसमें बड़े ही रहस्य जनक ५ जासूसी उपन्यास हैं—(१) गुलजारमहल, (२) फूल-बेगम, (३) विचित्र जौहरी, (४) अस्सी हजारकी चोरी, (५) स्त्री है वा राक्षसी? दाम ॥)

पता—आर, एल, बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

ऐय्यारी और तिलिस्मका **पुतलीमहल** मशहूर उपन्यास।

कुंवर चन्द्रसिंहका अपने ऐय्यार हीरासिंहके साथ शिकार खेलने जाकर "पुतलीमहल" नामक तिलिस्ममें गिरफ्तार हो जाना, तिलिस्मकी बहुत सी कोठरियोंको तोड़ना, तिलिस्मी दारोगाकी भांजीका राजकुमारपर मोहित हो जाना, राजकुमारकी खोजमें उनके और चार ऐय्यारोंका तिलिस्ममें पहुंचना, तिलिस्मी शैतानका एकाएक जमीनसे पैदा होकर राजकुमार वगैरहको 'तिलिस्म जालन्धर' में कैद कर देना। राजा वीरेन्द्रसिंहका मायापूरपर चढ़ाई करना। दोनों ओरकी बेशुमार फौजोंकी भयानक लड़ाइयां, राजा वीरेन्द्रसिंहकी विजय, कुमारके ससुर देवसिंहपर दुश्मनोंकी चढ़ाई, घनघोर संग्राम। किलेके पिछले हिस्सेका एकाएक उड़ जाना। नदीके बीचोंबीच लड़ाई होना, इत्यादि। दाम चारो भागका सिर्फ ३) रुपया

गुलबदन थियेट्रिकल उपन्यास।

प्रेम-रसका इससे अच्छा उपन्यास हिन्दीमें अबतक दूसरा नहीं छपा। नव्वाब सफदरजङ्ग और जमशेदकी भयानक लड़ाइयां, दो दो आदमियोंका गुलबदनके फिराकमें जी-जानसे कोशिश करना, गुलेनार और हैदरका बीचमें बाधा देना। जमशेदका गुलबदनको उड़ा लेजाना, पुलका टूट जाना और गुलबदनका नदीमें गिर पड़ना, आदि बातें लिखी गयी हैं। दाम सिर्फ १॥)

महाराष्ट्र-वीर सचित्र ऐतिहासिक उपन्यास।

यदि आप महाराष्ट्र-कुल-भूषण छत्रपति शिवाजी और सम्राट औरङ्गजेबका इतिहास-प्रसिद्ध भीषण संग्राम देखा चाहते हों, यदि आप महाराज शिवाजीके कैद होने और विलक्षण ढङ्गसे किलेसे निकल भागनेका अद्भुत समाचार जानना चाहते हों, यदि आप महाराष्ट्र-रमणियोंकी वीरता, बुद्धिमत्ता और धार्म्मिकताका आदर्श चरित्र पढ़ना चाहते हों, यदि आप औरङ्गजेबके दर्बारका गुप्त-रहस्य जानना चाहते हों, यदि आप राजनीतिकी गूढ़ और रहस्यजनक बातें सुनना चाहते हों, तो इसे अवश्य पढ़िये। दाम १)

पता—आर, एल, बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

सच्चा मित्र वा ज़िन्देकी लाश।

यह उपन्यास बड़ाही रहस्यमय, अनूठा शिक्षाप्रद और हृदयग्राही है। इसमें एक सच्चे मित्रका अपूर्व स्वार्थ-त्याग, कुटिलोंकी कुटिलता, पातिव्रतकी महिमा और मुरदेका जी उठना आदि बड़ी अद्भुत घटनायें लिखी गयी हैं। दाम ॥=) आ०

शिक्षाप्रद सचित्र सामाजिक नाटक।

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, राजनीति, धर्म्मनीति और समाज-नीतिसे भरा हुआ, ईसाइयोंकी पोल खोलनेवाला, कुटिलों, बेईमानों और जालसाजोंका भण्डा फोड़नेवाला, पातिव्रत-धर्म्मकी रक्षा करनेवाला और स्वार्थ-त्यागका उज्वल उपदेश देनेवाला यह नाटक इतना मनोहर, हृदयग्राही, शिक्षाप्रद और अनूठा है, कि एक-बार इसे पढ़ लेनेसे मनुष्य सैकड़ों तरहकी साँसारिक बुराइयोंसे सावधान हो जाता है, अवश्य पढ़िये। दाम बिना जिल्द २) रु० रङ्गीन जिल्द बँधीका २।) रुपया।

वीर-चरितावली

इसमें निम्नलिखित वीर-वीराङ्गनाओंकी १६ वीर-कहानियाँ दी गयी हैं, (१) रानी दुर्गावती, (२) रानी लक्ष्मीबाई, (३) जवाहर बाई, (४) कर्मदेवी (५) वीर-धात्री पन्ना, (६) वीर-बालक और वीर-नारी, (७) राजकुमार चण्ड, (८) पृथ्वीराज, (९) बादलचन्द, (१०) रायमल्ल, (११) सिक्ख वीर-रणजीतसिंह (१२) हम्मीर, (१३) महाराणा प्रतापसिंह, (१४) छत्रपति शिवाजी, (१५) राणा संग्रामसिंह, (१६) राजर्षि उम्मेदसिंह प्रभृति। सुन्दर सुन्दर ४ चित्र भी हैं १)

टिकेन्द्रजितसिंह

पाठकों! उन्नीसवीं सदीके अन्तमें "टिकेन्द्रजितसिंह" जैसा वीर-केशरी भारतवर्षमें दूसरा नहीं जन्मा। इस वीरने अपने बाहुबलसे सैकड़ों सिंह मारे और अनेक युद्धोंमें जय पाई। अन्तमें यह वीर अङ्गरेजोंसे युद्धमें परास्त हो, बड़ी वीरतासे हंसते हंसते फांसी पर चढ़ गया। दाम सिर्फ १) रु०

'बर्म्मन प्रेस' कलकत्ताकी सर्व्वोत्तम पुस्तकें।

साहसी-सुन्दरी या समुद्री डाकू

रहस्यमय सचित्र जासूसी उपन्यास।

जासूस-सम्राट मिष्टर ब्लेकके जासूसी घटनाओंसे भरे उपन्यास सारे संसारमें प्रसिद्ध हैं और लोग उन उपन्यासोंको ऐन्द्रजालिक उपन्यास बताते हैं। वास्तवमें यह बात ठीक है, क्योंकि जो व्यक्ति एकबार उनका कोई उपन्यास पढ़नेके लिये उठा लेता है, वह पढ़ता-पढ़ता तन्मयहो जाता है और बिना पूरा पढ़ छोड़ही नहीं सकता। यह उपन्यास भी मि० ब्लेककी आश्चर्य्यजनक जासूसियोंसे भरा है। इसमें साहसी सुन्दरी अमेलियाके ऐसे-ऐसे भयानक समुद्री डाकों और अद्भुत कार्य्य-कलापोंका हाल है, कि जिसके कारण केवल बृटिश-सरकार ही नहीं, बल्कि फ्रान्स, जर्म्मनी और अमेरिकाकी सरकारें भी तंग आगयी थीं। इसी साहसी-सुन्दरीके भीषण डाकू-जहाजको समुद्रों-समुद्रों घूम और बारम्बार नयी-नयी विपत्तियोंमें पड़कर जासूस-सम्राट मि० ब्लेकने किस सफाईसे गिरफ्तार किया है, कि पढ़कर दातों उँगली काटनी पड़ती है। चोरी, बदमाशी, डकैती, जालसाजी, खून-खराबी आदि अनेक रोएँ खड़ेकर देनेवाली घटनाएँ इसमें आदिसे अन्ततक भरी हैं। साथही रंग-बिरंगे सुन्दर-सुन्दर ६ चित्र भी दिये गये हैं। दाम १॥।), सजिल्द २।)

सचित्र ऐतिहासिक जासूसी उपन्यास।

आश्चर्य्यजनक व्यापारोंसे भरा और लोमहर्षण भीषण काण्डोंमें डूबा हुआ यह उपन्यास इतना दिलचस्प, हृदयग्राही और अनूठा है, कि पढ़ते-पढ़ते कभी आश्चर्य्यान्वित, कभी रोमाञ्चित और कभी पुलकित हो जाना पड़ता है। इसमें सम्राट-अकबरके शासन-कालका एक ऐसा भीषण षड्यन्त्र लिखा गया है, जिसके कारण स्वयं सम्राट् अकबर, राजा बीरबल और राज्यके प्रायः सभी बड़े-बड़े कर्म्मचारी घबरा उठे थे। "लाल-चिट्ठी"का ऐसा हैरत-अङ्गेज रहस्य खोला गया है, कि आप भी पढ़कर चकित, स्तम्भित और विमोहित होजाइयेगा। सुन्दर-सुन्दर ४ रङ्गीन चित्र भी दिये गये हैं। दाम बिना जिल्द १॥।), रेशमी जिल्द बँधी २।) है।

पता—आर, एल, बर्म्मन, एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

"रमणी-रत्न-माला" का तीसरा रत्न
सचित्र सीता सचित्र
अद्भुत छटा और अनूठे रंग-ढंगसे
छपकर तय्यार हो गयी !
सीता-हिन्दू-बालक-बालिकाओं और गृहलक्ष्मियोंके पढ़ने योग्य अपने ढंगका पहला और सर्वोत्तम ग्रन्थ है।
सीता-सारी रामायणका सार, उत्तमोत्तम शिक्षाओंका भाण्डार और हिन्दी साहित्यका सुललित शृंगार है।
सीता-की भाषा तथा रचनाशैली अति सहज, सरस, सुललित और कविताकी भाँति मनोहर है।
सीता-के पढ़नेसे एकही साथ इतिहास, पुराण, काव्य, नाटक, उपन्यास और नीति-ग्रन्थका आनन्द आता है।
सीता-प्रत्येक हिन्दू-रमणीके हाथमें रहने योग्य पुस्तक है और इसकी शिक्षाओंका अनुकरण उनके लोक-परलोकको बनानेवाला है।
सीता-राजनीति, धर्म्मनीति, समाजनीति और गार्हस्थ्यनीतिकी कुंजी है। इसे पढ़नेसे घर-घरमें सुख-शान्तिका निवास होता है।
सीता-कागज़, छपाई और चित्रोंकी बहुलताकी दृष्टिसे हिन्दीकी अद्वितीय पुस्तक है। इसमें १० बहुरंगे और ४ एकरंगे चित्र हैं।
सीता-बहू-बेटियों और बालक-बालिकाओंको उपहारमें देने योग्य सर्वांग-सुन्दर अमूल्य ग्रन्थ-रत्न है।
सीता-का मूल्य केवल २॥) रु०, रंगीन जिल्द २॥।) रु० और सुनहरी रेशमी कपड़ेकी जिल्द बँधीका केवल ३) रु० है।
पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०,
३७१, अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

"वीर-पञ्चरत्न" के एक चित्र का नमूना।
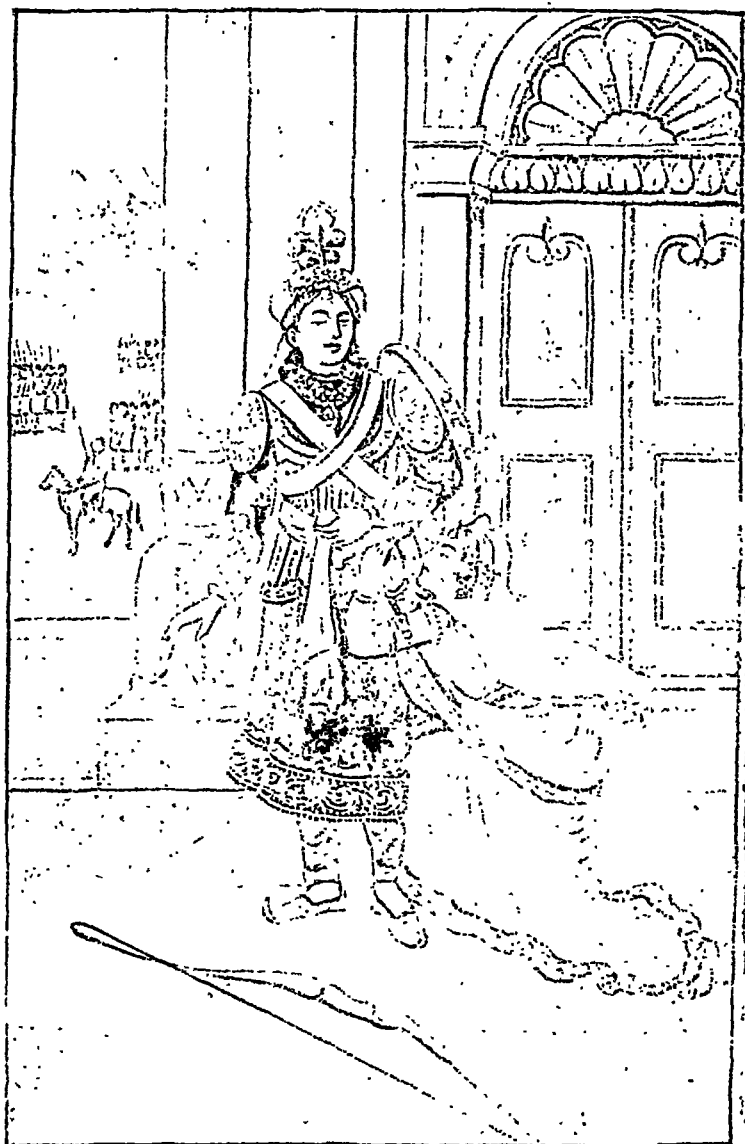
वीर-बालक 'अभिमन्यु' की रण-यात्रा।

पाठक ! "वीर-पञ्चरत्न" में इसी तरह के अनेकों वीरता-पूर्ण चित्र हैं, मूल्य